

मुकदमों का विवरण

वी. सेंटिल बालाजी

वी.

जिला निदेशक और ओ. आर. एस. द्वारा राज्य का प्रतिनिधित्व। (2023 की आपराधिक अपील संख्या 2284-2285)

अगस्त 07, 2023

[ए. एस. बोपन्ना और एम. एम. सुंदरेश, जे. जे.] हेडनोट्स

विचार के लिए मुद्दे:

(i) जब किसी गिरफ्तार व्यक्ति को धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 19 (3) के तहत क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाता है, तो क्या हैबियस कॉर्पस की रिट होगी;

((ii) क्या एस।41 पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत की गई गिरफ्तारी के लिए सी. आर. पी. सी. को कोई आवेदन मिला है।

(iii) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) का वास्तविक तात्पर्य यह है कि क्या पुलिस के पक्ष में 15 दिनों की हिरासत की अवधि केवल रिमांड के पहले 15 दिनों के भीतर होनी चाहिए या जांच की पूरी अवधि-60 या 90 दिनों तक, जैसा भी मामला हो, होनी चाहिए।

भारत का संविधान-रिट ऑफ हैबियस कॉर्पस-प्रिवेंशन ऑफ मनी लॉन्ड्रिंग एक्ट, 2002-प्रतिवादी-प्राधिकरण ने एस.19 पी. एम. एल. ए., 2002 और अपीलार्थी को 14.06.2023-रिट ऑफ हैबियस कॉर्पस फाई के नेतृत्व में गिरफ्तार किया गया था-इस बीच, प्रतिवादी ने प्रधान सत्र न्यायाधीश के समक्ष 15 दिनों के लिए न्यायिक हिरासत की मांग करते हुए एक आवेदन का नेतृत्व किया-रिमांड का आदेश पारित किया गया:

आयोजित किया गया:बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट केवल तभी जारी की जाएगी जब निरोध अवैध हो-नियम के रूप में, न्यायिक अधिकारी द्वारा रिमांड के आदेश को बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के माध्यम से चुनौती नहीं दी जा सकती है, जो न्यायिक कार्य में परिणत हो जाता है, जबकि यह अन्य वैधानिक उपचारों की मांग करने के लिए पीड़ित व्यक्ति के लिए खुला है-जब किसी गिरफ्तार व्यक्ति को पीएमएलए, 2002 की धारा 19 (3) के तहत क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाता है तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की कोई रिट नहीं।

853

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

झूठ होगा-अवैध गिरफ्तारी की कोई भी याचिका ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष की जानी चाहिए क्योंकि हिरासत न्यायिक हो जाती है-रिमांड के आदेश को केवल एक उच्च मंच के समक्ष चुनौती दी जानी चाहिए जैसा कि सीआरपीसी, 1973 के तहत प्रदान किया गया है, जब यह पीएमएलए 2002 की धारा 19 के साथ पठित सीआरपीसी, 1973 की धारा 167 (2) की योग्यता और अनुपालन दोनों पर दिमाग के उचित अनुप्रयोग को दर्शाता है-तत्काल मामले में, जब हैबियस कॉर्पस की रिट को एक उल्लेख पर सुनवाई के लिए लिया गया था, तो अपीलकर्ता को पीएमएलए, 2002 की धारा 19 के अनुपालन में प्रधान सत्र न्यायाधीश के समक्ष विधिवत पेश किया गया था-इस प्रकार हिरासत न्यायिक हो जाती है क्योंकि उसे प्रतिवादियों द्वारा विधिवत अग्रेषित किया गया था-इसलिए, उच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई की तारीख पर भी फाइलिंग का कोई कारण नहीं था।[पारस 29,81 और 88]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-धाराओं का अनुप्रयोग।41 पीएमएलए 2002 के तहत की गई गिरफ्तारी के लिए एक सीआरपीसी:

आयोजित किया गया:पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत एक अधिकृत अधिकारी पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के तहत बाध्यकारी शर्तों के खिलाफ सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 41 ए की कठोरता का पालन करने के लिए कर्तव्यबद्ध नहीं है-क्योंकि पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत पहले से ही एक विस्तृत प्रक्रिया पर विचार किया गया है जिसमें गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के पक्ष में पर्याप्त सुरक्षा उपाय हैं, सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 41 ए का कोई आवेदन नहीं है।[पैरा 35]

धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-अधिनियम के तहत गिरफ्तारी को प्रभावी बनाने के लिए:

आयोजित किया गया:गिरफ्तारी को प्रभावी बनाने के लिए, एक अधिकृत अधिकारी को अपने पास मौजूद सामग्री का आकलन और मूल्यांकन करना होता है-ऐसी सामग्री के माध्यम से, उससे यह विश्वास करने का कारण बनाने की उम्मीद की जाती है कि कोई व्यक्ति पीएमएलए, 2002 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है-इसके बाद, वह कारणों को दर्ज करने के अपने अनिवार्य कर्तव्य का पालन करते हुए गिरफ्तारी करने के लिए स्वतंत्र है-855

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस.

उक्त अभ्यास के बाद गिरफ्तारी के आधार पर गिरफ्तार व्यक्ति को सूचना दी जानी चाहिए-पीएमएलए, 2002 की धारा 19 (1) के अधिदेश का कोई भी गैर-अनुपालन गिरफ्तारी को ही दूषित कर देगा-उप-धारा (2) के तहत, अधिकृत अधिकारी गिरफ्तारी के तुरंत बाद, उप-धारा (1) के तहत अनिवार्य आदेश की एक प्रति अपनी हिरासत में सामग्री के साथ, अपने विश्वास के आधार पर, एक सीलबंद लिफाफे में न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को भेजेगा-इसके बाद, गिरफ्तार व्यक्ति को विशेष अदालत, या न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, ऐसी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर अधिकार क्षेत्र में ले जाना होगा। [पैरा 39 और 40]

धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-धाराओं का गैर-अनुपालन।19 अधिनियम के बारे में:

आयोजित किया गया:पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 62 पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के अनिवार्य अनुपालन की पुनरावृत्ति है-यह संबंधित अधिकारी को चेतावनी देने की प्रकृति में है कि वह पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के अधिदेश का कड़ाई से पालन करे, जिसमें विफल रहने पर उसे परिणाम भुगतने होंगे-यह उसका बाध्य कर्तव्य है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचने में उसके विश्वास के कारणों को दर्ज करे कि कोई व्यक्ति दोषी है और इसलिए उसे गिरफ्तार किया जाए-पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के अधिदेश का कोई भी गैर-अनुपालन गिरफ्तार व्यक्ति के लाभ के लिए सुनिश्चित होगा-ऐसे गैर-अनुपालन के लिए, सक्षम न्यायालय के पास पी. एम. एल. ए. की धारा 62 के तहत कार्रवाई शुरू करने की शक्ति होगी। [पारस 42 और 88]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-पी. एम. एल. ए., 2002 को प्राथमिकता दी जाएगी:

आयोजित किया गया:पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 65 के साथ-साथ सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 4 और 5 को संयुक्त रूप से पढ़ने से जांच के मामले में पी. एम. एल. ए. की प्राथमिकता पर संदेह की कोई गुंजाइश नहीं बची है।[पैरा 45]

धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-जाँच और जाँच:

आयोजित किया गया:पूछताछ और जांच के लिए एक ही सामग्री हो सकती है, जबकि अतिरिक्त सामग्री पर निर्भरता के लिए कोई प्रतिबंध नहीं है-वे एक ही चैनल में यात्रा कर सकते हैं, लेकिन उनके गंतव्य अलग-अलग हैं-एक सामग्री का उपयोग कई अन्य उद्देश्यों के साथ दोनों उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है-जब तक कि वे

856

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

एक साथ यात्रा करते समय, जांच और जांच के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होता है-जब वे अलग-अलग मार्ग लेते हैं, तो एक जांच न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के समक्ष समाप्त हो जाती है, जबकि दूसरी शिकायत के रूप में एक विशेष अदालत की ओर ले जाती है।[पैरा 46]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-निरोध और अभिरक्षा:

आयोजित किया गया:सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 (2) मजिस्ट्रेट के एक आदेश द्वारा हिरासत में अभियुक्त को हिरासत में रखने के लिए अधिकृत करती है-यह जानबूझकर हिरासत को हिरासत से अलग मानता है-हिरासत या तो अदालत या एक जांच एजेंसी के लिए होगी-हिरासत आमतौर पर मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने से पहले केवल एक जांच एजेंसी द्वारा की जाती है-न्यायिक होने से हिरासत मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के माध्यम से पुलिस में बदल सकती है-हिरासत हिरासत सबसे अच्छा हिरासत का एक पहलू हो सकता है-हालाँकि, वे एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं-जब हिरासत अधिकृत होती है, तो यह हिरासत बन जाएगी।[पैरा 57]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-एस के बीच अंतःक्रिया।19 पी. एम. एल. ए., 2002 और एस.167 सीआरपीसी के बारे में:

आयोजित किया गया:पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को किसी प्राधिकरण को रिमांड पर दिया जाता है, तो मजिस्ट्रेट की एक अलग भूमिका होती है-यह उसका बाध्य कर्तव्य है कि वह इसे देखे।19 पी. एम. एल. ए., 2002 का विधिवत अनुपालन किया जाता है और कोई भी विफलता गिरफ्तार व्यक्ति को रिहा करने का हकदार बनाएगी-मजिस्ट्रेट प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश पर भी विचार करेगा।19(1) पी. एम. एल. ए., 2002-सी. आर. पी. सी., 1973 का S.167 भी एस. को प्रभाव देने के लिए है।19 पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा और इसलिए यह मजिस्ट्रेट पर है कि वह इसके उचित अनुपालन के बारे में खुद को संतुष्ट करे-पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 (1) और सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 के बीच परस्पर क्रिया, पहले वाले के समापन के बाद बाद वाले के आवेदन को सुविधाजनक बनाएगी-कोई यह नहीं कह सकता कि सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 (2) गिरफ्तारी के लिए किसी प्राधिकरण पर लागू होती है, लेकिन हिरासत के लिए नहीं।[पारस 68 और 69]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -s.167-किसी भी बाहरी परिस्थिति में 15 दिनों की पुलिस हिरासत में कटौती:

आयोजित किया गया:किसी भी बाहरी परिस्थिति में 15 दिनों की पुलिस हिरासत में कटौती, भगवान का कार्य, अदालत का आदेश जांच एजेंसी का काम नहीं होने के कारण प्रतिबंध के रूप में कार्य नहीं करेगा।[पैरा 88] 857

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-एस की उप-धारा (2)।167 - शब्द "ऐसी अभिरक्षा":

आयोजित किया गया:दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) में आने वाले "ऐसी अभिरक्षा" शब्दों में न केवल पुलिस अभिरक्षा शामिल होगी, बल्कि अन्य जांच एजेंसियों की भी-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत "अभिरक्षा" शब्द का अर्थ वास्तविक अभिरक्षा होगा।[पैरा 88]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-एस की उप-धारा (2)।167 - "पूरे में 15 दिनों से अधिक की अवधि नहीं" शब्दों का संदर्भ:

आयोजित किया गया:सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 की उप-धारा (2) आगे इन शब्दों का संदर्भ देती है "संपूर्ण रूप से 15 दिनों से अधिक की अवधि नहीं"-इस शब्द को उस परंतुक को ध्यान में रखते हुए उद्देश्य से पेश किया गया है जो जांच के समापन के लिए एक बाहरी सीमा देता है-इसी तरह, "समग्र रूप से 15 दिनों से अधिक नहीं" शब्दों को बहुत ही समान तरीके से समझा जाना चाहिए-"पूर्ण" शब्द का अर्थ है "कुल, विभाजित नहीं, कोई भाग नहीं, पूर्ण, पूर्ण और पूर्ण"-15 दिनों की पुलिस हिरासत की अधिकतम अवधि जांच की पूरी अवधि-60 या 90 दिनों पर लागू होती है, समग्र रूप से।[पैरा 56 और 88]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-एस।167(2) सी. आर. पी. सी. पुलिस हिरासत को केवल पहले 15 दिनों की रिमांड तक सीमित करती है-मामला बड़ी पीठ को भेजा जाता है:

आयोजित किया गया:रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह मामले को भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष सीआरपीसी, 1973 की धारा 167 (2) के वास्तविक आयात के बड़े मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए उचित आदेश के लिए रखे कि क्या पुलिस के पक्ष में 15 दिनों की हिरासत की अवधि केवल रिमांड के पहले 15 दिनों के भीतर या जांच की पूरी अवधि-60 या 90 दिनों में होनी चाहिए, जैसा भी मामला हो।[पैरा 91]

शहरों और अन्य संदर्भों की सूची

सीबीआई बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी (1992) 3 एससीसी 141:[1992] 3 एस. सी. आर. 158-बड़ी पीठ का संदर्भ।

इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल (2020) 8 एस. सी. सी. 129:

[2020] 3 एस. सी. आर. 1-अनुसरण किया गया।

858 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

महाराष्ट्र राज्य बनाम तसनीम रिज़वान सिद्दीकी (2018) 9 एस. सी. सी. 745:[2018] 11 एससीआर 374; विजय मदनलाल चौधरी बनाम भारत संघ 2022 (10) स्केल; राजस्थान राज्य बनाम बसंत एग्रोटेक (इंडिया) लिमिटेड (2013) 15 एससीसी 1:[2013] 17 एस. सी. आर. 395; संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य

(2014) 16 एससीसी 623:[2014] 4 एस. सी. आर. 486; भारत दामोदर काले बनाम राज्य

एपी. (2003) 8 एस. सी. सी. 559; सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सी. बी. आई. (2022) 10 एस. सी. सी. 51; सत्यजीत बल्लूभाई देसाई बनाम गुजरात राज्य (2014) 14 एस. सी. सी. 434:[2013] 3 एससीआर 884; प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन (1994) 3 एससीसी 440:[1994] 1 एस. सी. आर. 445; अशोक मुनीलाल जैन बनाम प्रवर्तन निदेशालय (2018) 16 एस. सी. सी. 158; राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य (2017) 15 एस. सी. सी. 67:[2017] 8 एस. सी. आर. 785; केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, बेंगलोर बनाम श्रीकुमार

एजेंसियां और अन्य। (2009) 1 एससीसी 469:[2008] 16 एस. सी. आर. 720-पर निर्भर।

सीबीआई बनाम विकास मिश्रा (2023) 6 एससीसी 49; अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य

(2014) 8 एससीसी 273:[2014] 8 एस. सी. आर. 128; चगंती सत्यनारायण बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1986) 3 एस. सी. सी. 141:[1986] 2 एस. सी. आर. 1128; बुध सिंह बनाम पंजाब राज्य (2009) 9 एस. सी. सी. 266-निर्दिष्ट।

ग्लेज़ बनाम हार्ट 225 एमओ ऐप। 1205-संदर्भित।

अन्य मामलों के विवरणों में आयातित आदेश और आवेदन शामिल हैं

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार : 2023 की आपराधिक अपील संख्या 2284-2285

2023 के एच. सी. पी. सं. 1021 में मद्रास में उच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णय और आदेश दिनांक 04.07.2023 और 14.07.2023 से।

सह

2023 की आपराधिक अपील संख्या 2288-2289, 2286, 2287 और 2290।

रूप:

तुषार मेहता, सॉलिसिटर जनरल, कपिल सिब्बल, मुकुल रोहतगी, देवदत्त कामत, वरिष्ठ अधिवक्ता।, अर्जुन गर्ग, मीनेश दुबे, आकाश नंदोलिया, राजेश इमंदर, रेवांता सोलंकी, सुश्री सागुन श्रीवास्तव, सुश्री मीशा रोहतगी, नकुल मोहता, भारत मोंगा, सुश्री रिया ढींगरा, के. एम. अरुण, एन. भरनी कुमार, सुश्री रूपाली सैमुअल, सुश्री अनुषा, सुश्री सुमेधा, आकाश कुमार, मुथु थंगथुराई, सुश्री अक्षिता चौबे, मुकेश कुमार मरोरिया, श्रीमती माधव 859

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस.

सिंहल, कानू अग्रवाल, जोहेब हुसैन, अर्काज कुमार, विवेक गुरनानी, कविश जी, सुश्री मनीषा दुबे, बालाजी श्रीनिवासन, शिव कृष्णमूर्ति, श्रीमती लक्ष्मी राव, अधिवक्ता।उपस्थित दलों के लिए।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का निर्णय/आदेश

एम. एम. सुंदरेश, जे.

1 . अनुमति प्रदान की गई.

2. अनुसूचित अपराध एक लंबी न्यायिक यात्रा से गुजरने के बाद, धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (इसके बाद "पीएमएलए, 2002" के रूप में संदर्भित) के तहत प्रवर्तन मामला सूचना रिपोर्ट की बारी है। हमारे सामने जिस बात को चुनौती दी जा रही है, वह है अधिकांश न्यायाधीशों द्वारा पारित आदेश, जब मद्रास उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा एक रिट याचिका पर विचार करते हुए एक अलग राय पर एक संदर्भ दिया गया था, जिसमें गिरफ्तारी के अनुसरण में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की मांग की गई थी, जिसके बाद न्यायिक हिरासत में रिमांड और फिर संबंधित प्राधिकरण को भेजा गया था। हालांकि बार में लंबी दलीलें दी जाती हैं, लेकिन मुख्य मुद्दा केवल जांच एजेंसी के पक्ष में रिमांड पर है, जिसमें रिमांड के आदेशों को चुनौती देने के लिए कोई विशेष अनुरोध नहीं किया गया है, हालांकि अतिरिक्त आधार उठाए गए थे।

3. श्री कपिल सिब्बल और श्री मुकल रोहतगी ने अपीलार्थी की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ताओं और प्रत्यर्थियों की ओर से पेश विद्वान सॉलिसिटर जनरल श्री तुषार मेहता को सुना। हमने दस्तावेजों और लिखित तर्कों का भी अध्ययन किया है।

एक बीआरडी की नज़र:

4. हम सबसे पहले उन बुनियादी तथ्यों का वर्णन करेंगे जो इस तथ्य को तय करने के लिए पर्याप्त हैं। एक उचित समझ के लिए, हम 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8939-8940 से उत्पन्न अपीलों को प्रमुख मामले के रूप में अपनाते हैं। 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8652-8653 से उत्पन्न अपीलों में अपीलार्थी कोई और नहीं बल्कि 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8939-8940 से उत्पन्न अपीलों में अपीलार्थी की पत्नी है, जो उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाकर्ता है। संयोग से, उत्तरदाताओं ने हालांकि विशेष अनुमति से उत्पन्न अलग-अलग अपीलों का नेतृत्व किया

860

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

याचिका (आपराधिक) 2023 की संख्या 7437, 2023 की संख्या 7460 और 2023 की संख्या 8750 को प्रतिवादी के रूप में संदर्भित किया जाता है।

5. अपीलार्थी तमिलनाडु राज्य का कैबिनेट मंत्री है। एक प्रत्यक्ष कानूनी लड़ाई के बाद, अनुसूचित अपराध में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसार उसकी स्थिति अभियुक्त की बनी हुई है।

6. प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा अपीलार्थी और अन्य लोगों के खिलाफ 2021 की प्रवर्तन मामला सूचना रिपोर्ट संख्या 21 में मामला दर्ज किया गया था। इसके बाद 04.08.2021 और 07.10.2021 दिनांकित समन भेजे गए जिसमें अपीलार्थी की उपस्थिति की आवश्यकता थी। आगे के समन 07.03.2022 और 24.07.2022 पर जारी किए गए थे। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 17 को लागू करते हुए अधिकृत कार्यालय द्वारा उनके परिसर में 13.06.2023 पर तलाशी ली गई।

7. यह पाते हुए कि अपीलार्थी पर्याप्त सहयोग नहीं दे रहा था, प्राधिकरण ने 14.06.2023 पर गिरफ्तारी के माध्यम से पीएमएलए, 2002 की धारा 19 को लागू किया था। एक गिरफ्तारी ज्ञापन भी तैयार किया गया था। हालांकि गिरफ्तारी के आधार प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन अपीलार्थी ने उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया। गिरफ्तारी से संबंधित जानकारी उसके भाई, साली और पत्नी को भी दी गई थी।

8. सीने में दर्द की शिकायत के कारण अपीलार्थी को तमिलनाडु सरकार के मल्टी सुपर स्पेशियलिटी अस्पताल, चेन्नई ले जाया गया। उनकी पत्नी तुरंत उच्च न्यायालय गई और उसी दिन उन्होंने 2023 की एचसीपी No.1021 के रूप में एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का नेतृत्व किया। इस बीच, प्रत्यर्थियों ने 15 दिनों के लिए न्यायिक हिरासत की मांग करते हुए विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक आवेदन का नेतृत्व किया। रिमांड का आदेश पारित कर उसे 28.06.2023 तक न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया।

“विशेष लोक अभियोजक, प्रवर्तन निदेशालय, चेन्नई के अनुरोध पर ईसीआईआर, रिमांड रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों के साथ मैं तमिलनाडु, सरकारी मल्टी सुपर स्पेशियलिटी अस्पताल, ओमानथुर, चेन्नई में दोपहर 3:30 बजे आया। डॉ. जे. सेसिली मैरी माजेला, एसोसिएट प्रोफेसर, कार्डियोलॉजी ने प्रमाणित किया कि आरोपी सेंथिल बालाजी होश में और उन्मुख है। फिर मैं थिरु से मिला। उक्त अस्पताल के आई. सी. यू. वार्ड में आरोपी वी. सेंथिल बालाजी ने डॉ. जे. सेसिली मैरी माजेला की उपस्थिति में

पूछताछ की। अभियुक्त की ओर से पेश हुए विशेष लोक अभियोजक और वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एन. आर. एलंगो को सुना। गिरफ्तारी के आधार 861 बताए गए थे।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 862

जांच अधिकारी द्वारा सूचित किया गया था, लेकिन आरोपी ने स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उसी पर हस्ताक्षर किए। इसके अलावा कहा जाता है कि अभियुक्तों के रिश्तेदार गिरफ्तारी के स्थान पर उपलब्ध नहीं थे और उन्हें एस. एम. एस. और ई-मेल के माध्यम से सूचित किया गया है क्योंकि उन्होंने फोन नहीं उठाया था। सबूत भी तैयार किए गए हैं। मैंने आरोपी को गिरफ्तारी के आधार और उसके कानूनी सहायता के अधिकार के बारे में सूचित किया। अभियुक्त ने शिकायत की कि वह ईडी के अधिकारियों द्वारा संभाला जाने वाला व्यक्ति था, लेकिन किसी भी शारीरिक चोट की कोई शिकायत नहीं थी। अभियोजन पक्ष ने आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया है। 3 धन शोधन निवारण अधिनियम, उक्त अधिनियम की धारा 4 के अधीन दंडनीय है। इसलिए, आरोपी को 28.06.2023 तक न्यायिक हिरासत में भेज दिया जाता है।"

9. इसके बाद, अपीलार्थी ने जमानत के लिए एक आवेदन का नेतृत्व किया जिसे सभी दलीलों पर विचार करते हुए एक बोलने वाले आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसने वास्तविकता प्राप्त कर ली है। प्रतिवादियों ने आगे की जांच के लिए हिरासत की मांग करते हुए एक और आवेदन किया।

10. उपरोक्त सभी गतिविधियाँ एक ही दिन में हुईं, सिवाय जमानत के आवेदन को खारिज करने के। अपीलार्थी की पत्नी के नेतृत्व में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को एक तत्काल उल्लेख पर 15.06.2023 पर सुनवाई के लिए लिया गया था, जिसमें अपीलार्थी को बाईपास सर्जरी के लिए अपनी पसंद के एक निजी अस्पताल में स्थानांतरित करने का निर्देश दिया गया था। तदनुसार एक शल्यक्रिया की गई।

11. प्रत्यर्थियों के नेतृत्व में दायर आवेदन पर, विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश ने जमानत याचिका को खारिज करते हुए उन्हें 8 दिनों की अवधि के लिए हिरासत में ले लिया, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया था।

"24. परिणामस्वरूप, याचिका को स्वीकार कर लिया जाता है और श्री कार्तिक दसारी, उप निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय, चेन्नई को आरोपी श्री को हिरासत में लेने की अनुमति दी जाती है। वी. सेंटिल बालाजी 16.06.2023 से 8 दिनों के लिए निम्नलिखित शर्तों के साथ:

- (1) प्रवर्तन निदेशालय के उप निदेशक आरोपी को कावेरी अस्पताल से नहीं हटाएंगे, जिसे इलाज के लिए भर्ती किया गया है।
- (2) प्रवर्तन निदेशालय का उप निदेशक अस्पताल में आरोपी से उसकी बीमारियों और उसके बाद अस्पताल में उसे दिए गए उपचार को ध्यान में रखते हुए पूछताछ करेगा।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

डॉक्टरों की टीम से आवश्यक राय प्राप्त करना, जो पूछताछ के लिए उसकी शारीरिक स्थिति के बारे में उसका इलाज कर रहे हैं।

(3) प्रवर्तन निदेशालय के उप निदेशक आरोपी के स्वास्थ्य की स्थिति और उसे प्रदान किए गए उपचार में बिना किसी बाधा के आरोपी से पूछताछ करते हैं।

(4) प्रवर्तन निदेशालय के उप निदेशक को निर्देश दिया जाता है कि वे अभियुक्तों को पर्याप्त भोजन और आश्रय प्रदान करें और उन्हें थर्ड डिग्री विधि का उपयोग नहीं करना चाहिए और अभियुक्त के साथ कोई क्रूरता नहीं करनी चाहिए।

(5) प्रतिवादी/अभियुक्त पर जबरदस्ती की कोई धमकी नहीं दी जाएगी। (6) अभियुक्त के परिवार के सदस्यों को चिकित्सा सलाह के अधीन हिरासत के दौरान अभियुक्त को देखने की अनुमति दी जानी चाहिए। (7) प्रवर्तन निदेशालय के उप निदेशक को निर्देश दिया जाता है कि जब तक आरोपी अपनी हिरासत में है, उसे आवश्यक सुरक्षा प्रदान की जाए।

(8) प्रवर्तन निदेशालय के उप निदेशक को वीडियो कॉन्फ्रेंस के माध्यम से आरोपी को आई. डी. 1 पर दोपहर 3 बजे तक पेश करने का निर्देश दिया जाता है और तदनुसार याचिका का आदेश दिया जाता है।"

12. आई. डी. 1 पर एक आवेदन दायर करने के बाद, जिसमें यह निर्देश देने की मांग की गई थी कि पहले 15 दिनों की हिरासत की अवधि हिरासत की वास्तविक अवधि के रास्ते में नहीं आनी चाहिए, विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश के समक्ष, प्रत्यर्थियों ने 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 7437 में इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। संयोग से, 2023 की एक अन्य विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 7460 को दिनांक 1 के आदेश में लगाई गई शर्तों पर आधारित किया गया था, जिसके द्वारा उत्तरदाताओं के पक्ष में 8 दिनों की हिरासत दी गई थी। 13. बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लंबित होने पर ध्यान देते हुए, विशेष अनुमति याचिकाओं को लंबित रखते हुए, निम्नलिखित आदेश 21.06.2023 पर पारित किया गया था,

"1. हमने याचिकाकर्ता की ओर से भारत के विद्वान सॉलिसिटर जनरल श्री तुषार मेहता और उत्तरदाताओं की ओर से एस/श्री नीरज किशन कौल, देवदत्त कामत और विद्वान वरिष्ठ वकील विक्रम चौधरी को सुना है।

863

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 864

2. उच्च न्यायालय ने अभी तक निम्नलिखित मुद्दों पर अपनी अंतिम राय नहीं दी है:- -प.व. 98 का कथन भी उपयोगी रूप से पुनः इस प्रकार पेश किया जा सकता है -

(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की पुनर्स्थापन क्षमता;

((ii) हिरासत में लिए गए व्यक्ति द्वारा किए गए उपचार की अवधि को हिरासत में पूछताछ की अवधि से बाहर करना।

3. चूंकि इन दोनों मुद्दों की उच्च न्यायालय द्वारा जाँच की जाने की संभावना है, अर्थात्, 22-06-2023 या उसके तुरंत बाद, हम इन विशेष अनुमति याचिकाओं को 04-07-2023 पर आगे की सुनवाई के लिए पोस्ट करना उचित समझते हैं।

4. यह स्पष्ट किया जाता है कि इन विशेष अनुमति याचिकाओं के लंबित होने को उच्च न्यायालय के समक्ष निर्णय लंबित रहने तक मामले को स्थगित करने के आधार के रूप में नहीं लिया जाएगा।

5. उच्च न्यायालय द्वारा दिनांकित अंतरिम आदेश में की गई टिप्पणियों या सुनवाई के दौरान इस न्यायालय द्वारा की गई किसी भी मौखिक टिप्पणी का मामले के गुण-दोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।" 14. इस बीच, लंबित बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में न्यायिक और पुलिस दोनों रिमांड देने वाले विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश के आदेशों पर सवाल उठाते हुए अतिरिक्त आधार उठाए गए थे, इस तरह की कोई विशिष्ट प्रार्थना नहीं की गई थी।

15. 22.06.2023 पर, प्रत्यर्थियों ने मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष हिरासत अवधि की गिनती के उद्देश्य से अस्पताल में भर्ती होने की अवधि को बाहर करने के लिए एक आवेदन का नेतृत्व किया क्योंकि कोई वास्तविक हिरासत नहीं ली गई थी।

16. दिनांक 04.07.2023 के आदेश के अनुसार, डिवीजन बेंच के न्यायाधीश एक-दूसरे से अलग हो गए। न्यायमूर्ति निशा बानो ने बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को स्वीकार कर लिया, हालांकि रिमांड के किसी भी आदेश को चुनौती नहीं दी गई थी:

"(11) परिणामस्वरूप, बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को निम्नलिखित शर्तों में अनुमति दी गई है:- -प.व. 98 का कथन भी उपयोगी रूप से पुनः इस प्रकार पेश किया जा सकता है -

1. बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का लेखन बनाए रखने योग्य है;

2. प्रवर्तन निदेशालय को धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 के तहत पुलिस हिरासत लेने की शक्तियां नहीं सौंपी गई हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

3. अवधि को हटाने की मांग करने वाली प्रतिवादी 1 के नेतृत्व में विविध याचिका खारिज कर दी जाती है।

17. न्यायमूर्ति डी. भरत चक्रवर्ती ने दूसरे विद्वान न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचार से भिन्न अपने विचार दर्ज किए:

“(i) H.C.P.No में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका। 2023 का 1021 खारिज हो जाएगा;

((ii) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के तहत 15 दिनों की प्रारंभिक अवधि से 14.06.2023 से उस समय तक की अवधि की कटौती की जाएगी जब तक कि निरोधित/अभियुक्त प्रत्यर्थी की अभिरक्षा के लिए निर्धारित नहीं है।

((ग) बंदी/अभियुक्त कावेरी अस्पताल में उपचार तब तक जारी रखेगा जब तक कि उसे छुट्टी नहीं मिल जाती या आज से 10 दिनों की अवधि के लिए, जो भी पहले हो और उसके बाद, यदि आगे उपचार की आवश्यकता है, तो वह केवल जेल/जेल अस्पताल में ही हो सकता है।

(iv) जब भी वह चिकित्सकीय रूप से दोषी होगा, प्रतिवादी अभिरक्षा के लिए उपयुक्त न्यायालय का रुख कर सकेंगे और उसी पर कानून के अनुसार अपने गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाएगा, सिवाय इसके कि रिमांड की तारीख से 15 दिनों की समाप्ति के आधार पर इनकार नहीं किया जाएगा।

(v) हालांकि, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।”

18. एक संदर्भ पर, तीसरे विद्वान न्यायाधीश, न्यायमूर्ति सी. वी. कार्तिकेयन ने न्यायमूर्ति डी. भरत चक्रवर्ती के साथ अपनी सहमति व्यक्त की:“(i) क्या प्रवर्तन निदेशालय के पास गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की अभिरक्षा मांगने की शक्ति है?

इस न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर माननीय न्यायमूर्ति श्री डी. भरत चक्रवर्ती द्वारा व्यक्त किए गए विचारों/राय के अनुरूप 'हां' है।

((ii) क्या सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय द्वारा रिमांड का न्यायिक आदेश पारित किए जाने के बाद बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका स्वयं बनाए रखने योग्य है?

865

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 866

याचिका असाधारण परिस्थितियों में बनाए रखने योग्य होगी, लेकिन यह मामला किसी भी असाधारण परिस्थिति को आकर्षित नहीं करता है और परिणामस्वरूप चूंकि रिमांड का आदेश सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, इसलिए याचिका में मांगी गई राहत नहीं दी जा सकती है। मैं इस मुद्दे के संबंध में माननीय न्यायमूर्ति श्री डी. भरत चक्रवर्ती द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सहमत हूँ।(iii) परिणामी मुद्दा यह है कि क्या प्रवर्तन निदेशालय प्रारंभिक रिमांड की तारीख से पहले 15 दिनों के बाद अस्पताल में भर्ती होने की अवधि के लिए समय को हटाने की मांग करने का हकदार होगा।”

19. हालाँकि, विद्वान न्यायाधीश ने हिरासत की तारीख पर निर्णय लेने के लिए डिवीजन बेंच को वापस भेज दिया, जिसके बाद वास्तविक दिनों की आवश्यकता हो सकती है। पीड़ित, अपीलार्थी और उनकी पत्नी ने क्रमशः 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8939-8940 और 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8652-8653 का नेतृत्व किया। तीसरे विद्वान न्यायाधीश द्वारा आयोग को वापस भेजे जाने पर सीमित शिकायत के साथ, प्रत्यर्थियों ने 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8750 का नेतृत्व किया। दो और विशेष अनुमति याचिकाओं का नेतृत्व 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 7437 और 2023 की 7460 के रूप में किया गया है, जो उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेश और रिमांड प्रदान करते समय विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश द्वारा लगाई गई शर्तों और 15 दिनों के बहिष्कार को चुनौती देती हैं।

आवेदन की प्रस्तुतियाँ:

20. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कपिल सिब्बल और श्री मुकल रोहतगी को विस्तार से सुनने का हमें आनंद मिला है। हम संक्षेप में उनकी प्रस्तुतियों को एक साथ संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहेंगे।

21. पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत किसी अधिकृत अधिकारी के पक्ष में हिरासत की मांग करने की कोई शक्ति निहित नहीं है। इस तरह का एक अधिकृत अधिकारी पुलिस अधिकारी नहीं है और इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) (जिसे इसके बाद "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973" के रूप में संदर्भित किया गया है), विशेष रूप से उसके पक्ष में रिमांड के संदर्भ में उपलब्ध नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत अभिरक्षा केवल एक पुलिस अधिकारी के पक्ष में हो सकती है न कि किसी अन्य एजेंसी के। पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत कोई जांच नहीं है क्योंकि यह होनी है

[2023] 12 एस सी आर।

पूछताछ के पर्याय के रूप में लिया जाता है। गिरफ्तारी के 24 घंटे पूरे होने के बाद, एक अधिकारी के पक्ष में आगे हिरासत नहीं हो सकती है। एक लाभकारी कानून होने के नाते, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 ए का पालन न करने से रिमांड के आदेश दूषित हो जाएंगे। विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश ने पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के स्पष्ट गैर-अनुपालन की अनदेखी करते हुए एक गुप्त आदेश पारित किया।

22. गिरफ्तारी की तारीख से पुलिस को 15 दिनों की हिरासत की बाहरी सीमा तय हो गई है। इसलिए, कोई भी न्यायालय किसी भी परिस्थिति में इसका विस्तार नहीं कर सकता है। बहुमत के फैसले सी. बी. आई. पर लागू नहीं हुए।

v. अनुपम जे. कुलकर्णी (1992) 3 एस. सी. सी. 141 इसके बाद

न्यायालय, सही परिप्रेक्ष्य में। सी. बी. आई. बनाम विकास मिश्रा, (2023) 6 एस. सी. सी. 49 पर भरोसा गलत है, जिसमें बड़ी पीठ और समन्वय पीठ के निर्णय बाध्यकारी उदाहरण के रूप में कार्य कर रहे हैं। प्रक्रियात्मक गैर-अनुपालन को देखते हुए वर्तमान मामले में बंदी प्रत्यक्षीकरण का एक रिट निश्चित रूप से बनाए रखा जा सकता है। सी. आर. पी. सी., 1973 और पी. एम. एल. ए., 2002, दोनों के प्रावधानों का कड़ाई से अर्थ लगाया जाना चाहिए और उनकी व्याख्या की जानी चाहिए। रिमांड के आदेश पारित करने में विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश की ओर से पूरी तरह से दिमाग का उपयोग नहीं किया जाता है।

23. उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 22 के आलोक में विधायी योजना और समय-सीमा की सराहना नहीं करने में त्रुटि की है। भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 21, 22 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 को सामंजस्यपूर्ण तरीके से पढ़ा जाना चाहिए। यह अदालतों के लिए 15 दिनों की अवधि बढ़ाने का प्रावधान करने के लिए कानून बनाने के लिए नहीं है। द.

प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन में दिया गया निर्णय,

(1994) 3 एस. सी. सी. 440 वास्तव में अपीलार्थी के लाभ का आश्वासन देता है जिसे बहुमत के निर्णय स्वीकार करने में विफल रहे। चूंकि गिरफ्तारी उन सामग्रियों पर आधारित थी, जिन पर विश्वास करने के कारण पैदा करने पर संतुष्टि हुई थी, इसलिए कानून किसी और हिरासत में पूछताछ की सुविधा नहीं देता है। अपीलार्थी से बहुत अच्छी तरह से पूछताछ की जा सकती है और जेल में पूछताछ की जा सकती है।

उत्तरदाताओं की प्रस्तुतियाँ:

24. विद्वान सॉलिसिटर जनरल श्री तुषार मेहता ने उठाए गए तर्कों को पलटते हुए आगे की दलीलें दीं।

25. भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 को लागू करने वाली रिट याचिका विचारणीय नहीं है। एक कानूनी गिरफ्तारी हुई जिसके बाद 867

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 868 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

गिरफ्तार व्यक्ति को विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश के पास भेज दिया गया। न्यायिक अभिरक्षा और उसके बाद प्रत्यर्थियों के पक्ष में योग्यता के आधार पर आदेश पारित किए गए थे। रिट याचिका में केवल गिरफ्तारी को अवैध बताते हुए चुनौती दी गई थी। जब इसे 15.06.2023 पर लिया गया तो आरोपी को पहले ही पेश किया जा चुका था। इस प्रकार, उस दिन भी प्रार्थना निर्वाह में नहीं थी। प्रतिवादियों को वास्तविक अभिरक्षा नहीं मिली। संलग्न शर्तों को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है। यहां तक कि अपीलार्थी ने भी अपनी दलीलों में कहा है कि अस्पताल में उसकी तथाकथित बीमारी के दौरान उससे पूछताछ नहीं की जानी थी, बल्कि उसके बाद वह तैयार था। "अभिरक्षा" शब्द का प्रतिबंधात्मक अर्थ नहीं दिया जा सकता है। पी. एम. एल. ए., 2002 एक विशेष अधिनियम है जिसकी अपनी विशिष्ट विशेषताएं हैं। यह एक सुई जेनरिस कानून है। यह तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी के माध्यम से गहन जांच के लिए एक विस्तृत तंत्र प्रदान करता है। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 65 स्पष्ट रूप से सी. आर. पी. सी., 1973 पर हावी होने वाले प्रभाव अधिनियम की बात करती है। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 का उचित

अनुपालन है। अपीलार्थी जाँच एजेंसी को धोखा दे रहा है, जैसा कि उच्च न्यायालय के तीसरे विद्वान न्यायाधीश ने सही नोट किया है।

26. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (1) और (2) का पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत एक जांच के संबंध में आवेदन अब दीपक महाजन में दिए गए निर्णयों को ध्यान में रखते हुए एकीकृत नहीं है।

(इसके बाद अशोक मुनीलाल जैन बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2018) 16 एस. सी. सी. 158 है।

27. अपीलार्थी द्वारा अनुपम जे. कुलकर्णी (ऊपर) पर दी गई निर्भरता, जिसके बाद इस न्यायालय ने ऐसा किया, गलत धारणा है। उक्त मामले में, तथ्य अलग-अलग हैं क्योंकि यह गिरफ्तार व्यक्ति को जांच एजेंसी के पक्ष में हिरासत दिए जाने के बाद के दिनों की गिनती का मामला था, जबकि प्रतिवादियों को कभी भी ऐसी कोई हिरासत नहीं दी गई है। एक्ट्स क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट को नियंत्रित करने वाला सिद्धांत उन निर्णयों का विषय नहीं था। अपीलार्थी द्वारा की गई सभी कानूनी कार्यवाहियों में निष्पक्षता का अभाव है, वे केवल अभिरक्षा से बचने के लिए हैं। अपीलार्थी ने जमानत की अस्वीकृति को भी चुनौती नहीं दी है जिसमें इसी तरह की दलीलों पर ध्यान दिया गया है और खारिज कर दिया गया है। 28. संक्षेप में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि तथ्यों और कानून दोनों पर, अपीलार्थी के पास कोई मामला नहीं है क्योंकि कानून की प्रक्रिया का पूरी तरह से दुरुपयोग होता है। संयोगवश, यह प्रार्थना की जाती है कि उत्तरदाताओं के नेतृत्व में विशेष अनुमति याचिकाओं को आगे की जांच के लिए पर्याप्त संख्या में दिन देने की अनुमति दी जाए।

हैबियस कॉर्पस का लेखन:

29. बंदी प्रत्यक्षीकरण का एक रिट केवल तभी जारी किया जाएगा जब हिरासत अवैध हो। नियम के रूप में, न्यायिक अधिकारी द्वारा रिमांड के आदेश, जो न्यायिक कार्य में परिणत होता है, को बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के माध्यम से चुनौती नहीं दी जा सकती है, जबकि यह पीड़ित व्यक्ति के लिए अन्य वैधानिक उपचार लेने के लिए खुला है। जब मन के पूर्ण गैर-अनुपयोग के साथ अनिवार्य प्रावधानों का गैर-अनुपालन होता है, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण के एक रिट पर विचार करने का मामला हो सकता है और वह भी एक चुनौती के माध्यम से। 30. ऐसे मामले में जहां सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 और पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के आदेश को एक गुप्त आदेश द्वारा पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया जाता है, बंदी प्रत्यक्षीकरण के एक रिट पर विचार किया जा सकता है, बशर्ते कि एक चुनौती विशिष्ट रूप से दी गई हो। हालाँकि, मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड के लिए कारण बताते हुए पारित आदेश का परीक्षण केवल कानून के तहत प्रदान किए गए तरीके से किया जा सकता है, न कि भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 को लागू करके। वैधानिक अधिदेश का पालन न करने के कारण हिरासत के अवैध होने और न्यायिक आदेश में दिए गए गलत या अपर्याप्त कारणों के बीच एक अंतर है। जबकि पहले मामले में बंदी प्रत्यक्षीकरण के एक रिट पर विचार किया जा सकता है, बाद वाले मामले में एकमात्र उपाय वैधानिक रूप से दी गई राहत की मांग करना है। दूसरे शब्दों में, योग्यता के आधार पर रिमांड के आदेश को कानून के अनुरूप चुनौती दी जानी चाहिए, जबकि किसी प्रावधान का पालन न करने से किसी पक्ष को असाधारण अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने का अधिकार मिल सकता है। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के तहत गिरफ्तारी में एक रिट केवल तभी निहित होगी जब किसी व्यक्ति को अदालत के समक्ष पेश नहीं किया जाता है जैसा कि उप-धारा (3) के तहत अनिवार्य है, क्योंकि यह उसके बाद न्यायिक हिरासत बन जाती है और संबंधित न्यायालय उचित अनुपालन पर विचार करने के लिए बेहतर स्थिति में होगा।

31. यह कहना सही होगा कि जब कारण पाए जाते हैं, तो रिमांड के आदेश पर एक उपाय कहीं और निहित होता है। इसी तरह, ऐसी कोई भी रिट तब बनाए रखने योग्य नहीं होगी जब मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक कार्य के प्रयोग में पारित रिमांड आदेश को कोई स्पष्ट चुनौती नहीं दी जाती है। महाराष्ट्र राज्य बनाम.

तसनीम रिजवान सिद्दीकी (2018) 9 एस. सी. सी. 745:

“10. यह सवाल कि क्या जांच के तहत अपराध के संबंध में अधिकार क्षेत्र मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसार पुलिस हिरासत में रहने वाले व्यक्ति के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट रखी जा सकती है, इस मुद्दे पर 869 में विचार किया गया है।

सौरभ कुमार बनाम जेलर, कोनीला जेल, (2014) 13 एस. सी. सी. 436:(2014) 5 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 702 और मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2013)

1 एससीसी 314:(2013) 1 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 475. यह अब रेज इंटीग्रा नहीं है। में

वर्तमान मामला, स्वीकार्य रूप से, जब बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने के लिए रिट याचिका प्रत्यर्थी द्वारा **18-3-2018 19-3-2018** पर दायर की गई थी और उच्च न्यायालय द्वारा **21-3-2018** [तसनीम रिज़वान सिद्दीकी बनाम महाराष्ट्र राज्य, **2018 SCC ऑनलाइन बम 2712**] पर निर्णय लिया गया था, तो उसका पति रिज़वान आलम सिद्दीकी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक आदेश के अनुसार पुलिस हिरासत में था, जिसमें उसे पुलिस हिरासत में देने के लिए प्राथमिकी संख्या। आई-**31**, दिनांक **17-3-2018** के आदेश के अनुसार और किस पुलिस रिमांड को **23-3-2018** तक सुनिश्चित करना था। इसके अलावा, मजिस्ट्रेट के कथित आदेश को चुनौती दिए बिना, एक रिट याचिका को बंदी प्रत्यक्षीकरण की राहत तक सीमित कर दिया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, यह निरंतर अवैध हिरासत का मामला नहीं था, बल्कि पदधारी क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट द्वारा पारित एक आदेश के आधार पर न्यायिक हिरासत में था, जो एक आपराधिक मामले की जांच के दौरान पुलिस रिमांड प्रदान करने के लिए लागू था। नतीजतन, बंदी प्रत्यक्षीकरण का कोई आदेश जारी नहीं किया जा सका।"

(जोर दिया गया)

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, **1973** की धारा **41** ए बनाम धन निकासी रोकथाम अधिनियम, **2002** की धारा **19**:

धारा **41** ए

"41 ए. पुलिस अधिकारियों के समक्ष उपस्थित होने की सूचना।— **(1)** पुलिस ने

अधिकारी, उन सभी मामलों में जहां धारा **41** की उप-धारा **(1)** के प्रावधानों के तहत किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी की आवश्यकता नहीं है, उस व्यक्ति को निर्देश देते हुए एक नोटिस जारी करेगा जिसके खिलाफ एक उचित शिकायत की गई है, या विश्वसनीय जानकारी प्राप्त हुई है, या एक उचित संदेह मौजूद है कि उसने एक संज्ञेय अपराध किया है, उसके सामने या ऐसे अन्य स्थान पर उपस्थित होने के लिए जो नोटिस में निर्दिष्ट किया जा सकता है। **(2)** जहाँ किसी व्यक्ति को ऐसी सूचना जारी की जाती है, वहाँ उस व्यक्ति का कर्तव्य होगा कि वह सूचना की शर्तों का पालन करे।

(3) जहाँ ऐसा व्यक्ति नोटिस का पालन करता है और उसका पालन जारी रखता है, उसे निम्नलिखित में निर्दिष्ट अपराध के संबंध में गिरफ्तार नहीं किया जाएगा।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[**2023**] **12** एस सी आर।

जब तक कि दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, पुलिस अधिकारी की राय नहीं है कि उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए।

(4) जहाँ ऐसा व्यक्ति, किसी भी समय, सूचना की शर्तों का पालन करने में विफल रहता है या अपनी पहचान बताने के लिए तैयार नहीं है, वहाँ पुलिस अधिकारी, ऐसे आदेशों के अधीन रहते हुए, जो इस संबंध में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किए गए हों, उसे सूचना में उल्लिखित अपराध के लिए गिरफ्तार कर सकता है।" **32**. इस न्यायालय द्वारा एक से अधिक अवसरों पर अत्यधिक महत्व के इस प्रावधान की उचित व्याख्या की गई है [अर्नेश कुमार बनाम.

बिहार राज्य, **(2014) 8** एस. सी. सी. **273** और सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सी. बी. आई.,

(2022) 10 एससीसी 51]। इस प्रावधान की व्याख्या, जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को संरक्षित करना और उसकी रक्षा करना है, पर पूर्व में बताए गए निर्णयों में ध्यान दिया गया है। इस प्रावधान को पी. एम. एल. ए., **2002** की धारा **19** का पूरक नहीं कहा जा सकता है। पी. एम. एल. ए., **2002** एक सुई जेनरिस कानून होने के नाते, अपने उद्देश्यों के आलोक में गिरफ्तारी से निपटने के लिए अपना तंत्र है। पी. एम. एल. ए., **2002** की चिंता धन शोधन को रोकना, पर्याप्त वसूली करना और दोषियों को दंडित करना है। यही कारण है कि पी. एम. एल. ए., **2002** के अध्याय **5** के तहत समन, तलाशी और जब्ती आदि के लिए एक व्यापक प्रक्रिया स्पष्ट रूप से निर्धारित की गई है। पी. एम. एल. ए., **2002** की धारा **19** सहित प्रासंगिक प्रावधानों के उचित अनुपालन के बाद ही गिरफ्तारी की जाएगी। इसलिए, विशेष रूप से पी. एम. एल. ए., **2002** की धारा **65** के तहत, सी. आर. पी. सी., **1973** की धारा **41** ए का पालन करने और उसे अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

33. किसी भी अधिदेश के अभाव में, कोई भी अधिकृत कार्यालय को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 ए का उचित अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है, विशेष रूप से जब पीएमएलए, 2002 के तहत एक स्पष्ट, अलग और विशिष्ट कार्यप्रणाली उपलब्ध हो। पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत गिरफ्तारी के लिए सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 41 ए का पालन केवल पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत जांच/जांच को पराजित और नष्ट करेगा। जब तक किसी व्यक्ति को समन जारी नहीं किया जाता है, तब तक उसके ज्ञान में होने की उम्मीद नहीं की जाती है। पी. एम. एल. ए., 1973 के तहत अनिवार्य के अलावा कोई भी पूर्व सूचना, चल रही जांच को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती है।

34. पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 45 का स्पष्टीकरण एक बार फिर एक अधिकृत अधिकारी द्वारा निभाई जाने वाली आवश्यक भूमिका को दोहराता है, जो पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के तहत अभिनिर्धारित शर्तों को विधिवत पूरा करता है। व्याख्या में एक स्पष्टीकरण के माध्यम से कहा गया है कि 871 का उल्लेख किया गया है।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 872 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

अधिनियम के तहत संज्ञेय और गैर-जमानती होगा, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में इसके विपरीत कुछ भी निहित होने के बावजूद। विजय मदनलाल

चौधरी बनाम भारत संघ, 2022 (10) स्केल: “2002 का अधिनियम

19. इस अधिनियम को अन्य बातों के साथ-साथ धन शोधन, अपराध की आय की कुर्की, न्यायनिर्णयन और उसे केंद्र सरकार में निहित करने, धन शोधन से निपटने के लिए समन्वय उपायों के लिए एजेंसियों और तंत्रों की स्थापना और अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि में लिप्त व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने के लिए एक व्यापक कानून बनाने की तत्काल आवश्यकता को पूरा करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह आवश्यकता देशों की वित्तीय प्रणालियों के लिए गंभीर खतरे के कारण दुनिया भर में महसूस की गई थी, जिसमें उनकी अखंडता और संप्रभुता भी शामिल थी।

धन शोधन। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने अपराध की आय से जुड़ी प्रक्रिया और गतिविधियों से उत्पन्न गंभीर खतरे से निपटने और इसे देशों की औपचारिक वित्तीय प्रणालियों के साथ एकीकृत करने के लिए प्रदान की जाने वाली व्यवस्था पर विचार-विमर्श किया। नार्कोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस में अवैध तस्करी के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन सी, 1989 में प्रतिपादित बेसल स्टेटमेंट ऑफ प्रिंसिपल्स, 14 से 16 जुलाई, 1989 तक पेरिस में आयोजित सात प्रमुख औद्योगिक देशों के शिखर सम्मेलन में स्थापित एफ. ए. टी. एफ., संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनाए गए राजनीतिक घोषणा और कार्रवाई के महान कार्यक्रम में इन मुद्दों पर चर्चा की गई थी। संयुक्त राष्ट्र ने 8 से 10 जून, 1998 को संयुक्त रूप से विश्व नशीली दवाओं की समस्या का मुकाबला करने पर विशेष सत्र में राज्य दलों से एक व्यापक कानून बनाने का आग्रह किया। यह विधेयक के साथ उद्देश्यों और कारणों के परिचय और विवरण से स्पष्ट है जो 2002 का अधिनियम बन गया।

× × ×

× × ×

× × ×

2002 के अधिनियम की प्रस्तावना

23. 2002 के अधिनियम की प्रस्तावना इस प्रकार है:

“धन-शोधन को रोकने और धन से प्राप्त या उसमें शामिल संपत्ति को गोपनीय रखने का प्रावधान करने के लिए एक अधिनियम

धनशोधन और उससे जुड़े या आकस्मिक मामलों के लिए।

क्योंकि प्रस्ताव एस-17/2 के साथ संलग्न राजनीतिक घोषणा और वैश्विक कार्य कार्यक्रम को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा फरवरी, 1990 के 23 वें दिन अपने सत्रहवें विशेष सत्र में अपनाया गया था;

और जहां 8 से 10 जून, 1998 को आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र द्वारा अपनाई गई राजनीतिक घोषणा में सदस्य देशों से राष्ट्रीय धन-शोधन कानून और कार्यक्रम को अपनाने का आह्वान किया गया है;

और क्योंकि उपरोक्त संकल्प और घोषणा को लागू करना आवश्यक माना जाता है।"

यहां तक कि अधिनियम की प्रस्तावना भी उस पृष्ठभूमि को मजबूत करती है जिसमें संसद द्वारा अधिनियम को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के प्रति देश की प्रतिबद्धता के रूप में अधिनियमित किया गया है। प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि यह अधिनियम धन-शोधन को रोकने और धन-शोधन से प्राप्त या उसमें शामिल संपत्ति और उससे जुड़े या उससे आनुषंगिक मामलों को गोपनीय रखने के लिए लागू किया गया है। यह न तो शुद्ध नियामक कानून है और न ही शुद्ध दंडात्मक कानून है। यह धन-शोधन के संकट से निपटने के लिए आवश्यक कई पहलुओं का समामेलन है। एक मायने में, यह एक सुई जेनरिस कानून है।

× × ×

× × ×

× × ×

एआरआरईएसटी

88. 2002 के अधिनियम की धारा **19** में कहा गया है कि धन शोधन में शामिल व्यक्ति की गिरफ्तारी किस तरीके से की जा सकती है। धारा **19** की उप-धारा **(1)** में यह परिकल्पना की गई है कि निदेशक, उप-निदेशक, सहायक निदेशक या केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत कोई अन्य अधिकारी, यदि उसके पास यह विश्वास करने का कारण देने वाली सामग्री है कि कोई व्यक्ति **2002** के अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है, तो वह ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है। उच्च श्रेणी के कार्यालयों में निवेश की जा रही शक्ति के अलावा, धारा **19** में **873** अंतर्निहित सुरक्षा उपायों का प्रावधान है।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] **874**

अधिकृत अधिकारियों द्वारा पालन किया जाता है, जैसे कि धन-शोधन में व्यक्ति की संलिप्तता के बारे में विश्वास के कारणों को दर्ज करना। इसे लिखित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए और व्यक्ति की गिरफ्तारी करते समय, इस तरह की गिरफ्तारी के आधार को उस व्यक्ति को सूचित किया जाता है। इसके अलावा, अधिकृत अधिकारी को आदेश की एक प्रति, अपने कब्जे में सामग्री के साथ, एक सीलबंद लिफाफे में न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को भेजनी होती है, जो बदले में नियमों के अनुसार निर्धारित अवधि के लिए इसे संरक्षित करने के लिए बाध्य होता है। यह सुरक्षा धन शोधन में शामिल व्यक्ति को गिरफ्तार करने की आवश्यकता के बारे में लिखित रूप में दर्ज राय बनाने में अधिकृत अधिकारी की निष्पक्षता, निष्पक्षता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए है। इतना ही नहीं, इस प्रकार गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को चौबीस घंटे के भीतर विशेष अदालत या न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के समक्ष पेश करना भी अधिकृत अधिकारी का दायित्व है। यह प्रस्तुति **1973** की संहिता की धारा **167** की आवश्यकता का पालन करने के लिए भी है। धारा **19** में कुछ भी नहीं है, जो **1973** की संहिता की धारा **167** के तहत उत्पादन की आवश्यकता के विपरीत है, लेकिन धारा **19 (3)** के संदर्भ में **2002** के अधिनियम के तहत एक स्पष्ट वैधानिक आवश्यकता होने के कारण, इसका अनुपालन अधिकृत अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए। धारा **19**, जैसा कि समय-समय पर संशोधित किया जाता है, इस प्रकार है।

(जोर दिया गया) **35**। उपरोक्त चर्चा के आलोक में, पी. एम. एल. ए., **2002** के तहत एक अधिकृत अधिकारी पी. एम. एल. ए., **2002** की धारा **19** के तहत बाध्यकारी शर्तों के खिलाफ सी. आर. पी. सी., **1973** की धारा **41** ए की कठोरता का पालन करने के लिए कर्तव्यबद्ध नहीं है। उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलेगा कि चूंकि पी. एम. एल. ए., **2002** के तहत पहले से ही एक विस्तृत प्रक्रिया पर विचार किया गया है, जिसमें गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के पक्ष में पर्याप्त सुरक्षा उपाय हैं, इसलिए सी. आर. पी. सी., **1973** की धारा **41** ए का कोई अनुप्रयोग नहीं है।

36. विधि आयोग ने अपनी **177** वीं रिपोर्ट के अध्याय पाँच में धारा **41** ए को लागू करने की आवश्यकता पर भी ध्यान दिया है: "लेकिन फिर यह कहा जाता है कि चूंकि दोषसिद्धि की दर बहुत कम है, इसलिए गिरफ्तारी का तथ्य ही एक प्रकार की सजा है जिसे लोगों को दी जा सकती है।

[2023] 12 एस सी आर।

दोषी। यह तर्क फिर से भ्रामक और अस्वीकार्य है। अपराध या निर्दोषता का निर्धारण अदालतों द्वारा किया जाना चाहिए न कि पुलिस द्वारा। पुलिस केवल संतुष्ट होने पर मुकदमा चलाती है कि एक व्यक्ति एक के लिए दोषी है

यह दंड नहीं देता है। यह भी सुझाव दिया जाता है कि जनसंख्या में भारी वृद्धि, बेरोजगारी और पर्याप्त संसाधनों की कमी के कारण अपराध में स्पष्ट वृद्धि हुई है। ऐसा हो सकता है। लेकिन यह घटना कानून में प्रस्तावित परिवर्तनों के खिलाफ कैसे लड़ती है। वास्तव में, पुलिस का ध्यान गंभीर ऑफ एनस और आर्थिक ऑफ एनस पर अधिक होना चाहिए न कि मामूली ऑफ एनस पर। नाबालिग के लिए व्यक्तियों को गिरफ्तार करने और उन्हें लंबे समय तक जेल में रखने की अवांछनीय प्रथा (या तो इसलिए कि वे जमानत के लिए आगे नहीं बढ़ सकते हैं या इसलिए कि वे अदालत की संतुष्टि के लिए जमानत नहीं दे सकते हैं—यह सब उनकी गरीबी के कारण) को समाप्त करना चाहिए। वास्तव में, इस पहलू ने पहले ही सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसने आर्थिक अपराधों को छोड़कर सात साल तक के दंडनीय अपराधों के मामले में अभियुक्तों की रिहाई/आरोपमुक्त करने के लिए कई निर्देश दिए हैं।

(जोर दिया गया) 37। उपरोक्त से, हम इस तरह के परिचय के मुख्य कारणों में से एक की सराहना कर सकते हैं। यह आर्थिक अपराधों सहित कुछ श्रेणियों के अपराधों पर लागू नहीं किया जाना था, बल्कि भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत केवल छोटे अपराधों पर लागू किया जाना था।

धन शोधन अधिनियम, 2002 की रोकथाम के संबंध में प्रावधान:

“सभी शक्तियाँ अतिक्रमणकारी प्रकृति की हैं” यू. एस. सुप्रीम कोर्ट ट्रॉप बनाम डलेस (1958) के न्यायमूर्ति फ्रैंकफर्टर ने कहा।

38. पी. एम. एल. ए., 2002 का अध्याय 5 किसी प्राधिकरण की सर्वेक्षण, तलाशी और किसी स्थान और व्यक्ति दोनों को जब्त करने की शक्ति से संबंधित है, जिसके बाद यदि आवश्यक हो तो गिरफ्तारी की जा सकती है। ये प्रावधान जाँच/जाँच के संचालन में कदम-दर-कदम सहायक हैं।

875

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 876

धारा 19

“19. गिरफ्तार करने की शक्ति।— (1) यदि निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक, या केंद्र सरकार द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा इस संबंध में प्राधिकृत कोई अन्य अधिकारी अपने पास मौजूद सामग्री के आधार पर यह विश्वास करने का कारण रखता है (इस तरह के विश्वास का कारण लिखित रूप में दर्ज किया जाना है) कि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है, तो वह ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है और जितनी जल्दी हो सके, उसे ऐसी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित करेगा।

(2) निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक या कोई अन्य अधिकारी, उप-धारा (1) के तहत ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के तुरंत बाद, उस उप-धारा में निर्दिष्ट अपने कब्जे में सामग्री के साथ आदेश की एक प्रति, उस मामले में, जो भी निर्धारित किया जाए, एक सीलबंद लिफाफे में न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को भेजेगा और ऐसा न्यायनिर्णायक प्राधिकरण ऐसी अवधि के लिए ऐसा आदेश और सामग्री रखेगा, जो निर्धारित की जाए।

(3) उप-धारा (1) के तहत गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति को चौबीस घंटे के भीतर, [विशेष न्यायालय या] न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के पास ले जाया जाएगा, जिसकी अधिकारिता होगी: बशर्ते कि चौबीस घंटे की अवधि में गिरफ्तारी के स्थान से [विशेष न्यायालय या] मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय शामिल नहीं होगा।”

39. गिरफ्तारी को प्रभावी बनाने के लिए, एक अधिकृत अधिकारी को अपने पास मौजूद सामग्री का आकलन और मूल्यांकन करना होता है। ऐसी सामग्रियों के माध्यम से, उनसे यह विश्वास करने का कारण बनाने की अपेक्षा की जाती है कि कोई व्यक्ति पीएमएलए, 2002 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है। इसके बाद, वह कारणों को दर्ज करने के अपने अनिवार्य कर्तव्य का

पालन करते हुए गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र है। उक्त अभ्यास के बाद गिरफ्तारी के आधार पर गिरफ्तार व्यक्ति को जानकारी दी जानी चाहिए। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 (1) के अधिदेश का कोई भी गैर-अनुपालन गिरफ्तारी को ही दूषित कर देगा। उप-धारा (2) के तहत, अधिकृत अधिकारी गिरफ्तारी के तुरंत बाद, उप-धारा (1) के तहत अनिवार्य आदेश की एक प्रति अपनी अभिरक्षा में सामग्री के साथ, अपने विश्वास का आधार बनाते हुए, न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को एक सीलबंद लिफाफे में भेजेगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उप-धारा (2) का अनुपालन भी गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी का एक गंभीर कार्य है जो कोई अपवाद नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

40. इसके बाद, गिरफ्तार व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर विशेष न्यायालय, या न्यायिक मजिस्ट्रेट या मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, के अधिकार क्षेत्र में ले जाया जाना है। इस अधिदेश का पालन करते समय न्यायालय की यात्रा में बिताया गया समय समाप्त हो जाएगा।

बहिष्कृत। विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर): “**89..... 2002** के अधिनियम में प्रदान किए गए सुरक्षा उपाय और गिरफ्तारी से पहले अधिकृत अधिकारी द्वारा पूरी की जाने वाली पूर्व शर्तें, जैसा कि **2002** के अधिनियम की धारा **19** में निहित है, समान रूप से कठोर और उच्च मानक की हैं। वे सुरक्षा उपाय यह सुनिश्चित करते हैं कि अधिकृत अधिकारी मनमाने ढंग से कार्य न करें, लेकिन उन्हें **2002** के अधिनियम की धारा **44 (1) (बी)** के तहत विशेष अदालत के समक्ष शिकायत दर्ज करने से पहले ही धन शोधन के अपराध में शामिल किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की आवश्यकता के बारे में अपने फैसले के लिए जवाबदेह बनाते हैं। यदि अधिकृत अधिकारी की कार्रवाई परेशान करने वाली पाई जाती है, तो उसे **2002** के अधिनियम की धारा **62** के तहत निर्दिष्ट सजा के साथ आगे बढ़ाया जा सकता है और दोषी ठहराया जा सकता है। **1973** की संहिता में निर्धारित गिरफ्तारी से पहले क्षेत्राधिकार वाले पुलिस अधिकारियों द्वारा पालन किए जाने वाले सुरक्षा उपायों की निश्चित रूप से तुलना नहीं की जा सकती है। यह देखने के लिए पर्याप्त है कि यह शक्ति उच्च पदस्थ अधिकारियों को आगे की शर्तों के साथ दी गई है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि **2002** के अधिनियम की धारा **44 (1) (बी)** के तहत औपचारिक शिकायत दर्ज होने से पहले ही किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी का सहारा लेने में निष्पक्षता और उनकी अपनी जवाबदेही है।

इस संबंध में उच्च श्रेणी के अधिकारियों में शक्ति का निवेश प्रीमियम ग्रेनाइट और ए. एन. आर. वी. में तर्कसंगतता की कसौटी पर खरा उतरा है। राज्य

टी. एन. और अन्य, (1994) 2 एस. सी. सी. **691**, जिसमें न्यायालय ने

यह स्थिति कि अपने आप में शक्ति के प्रयोग के लिए कारण देने की आवश्यकता मनमानेपन की संभावनाओं को बाहर करती है। इसके अलावा, सुखविंदर में

पाल बिपन कुमार और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1982) 1 एस. सी. सी.

31, न्यायालय ने इस स्थिति को दोहराया कि जहां किसी विशेष कानून के प्रावधानों को लागू करने का विवेकाधिकार सरकार या सर्वोच्च अधिकारियों में से किसी एक के पास छोड़ दिया जाता है, तो यह माना जाएगा कि ऐसे सर्वोच्च प्राधिकरण में निहित विवेकाधिकार का दुरुपयोग नहीं किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, केंद्र सरकार ने **2005** में धारा **73** के तहत नियम बनाए हैं, जिसमें फॉर्म और आदेश **877** की एक प्रति को अग्रेषित करने के तरीके के बारे में बताया गया है।

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. **878** सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को सामग्री के साथ किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी और उसके प्रतिधारण की अवधि। एक और निर्णय में अहमद नूरमोहम्मद भट्टी बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2005)

3 एस. सी. सी. **647**, इस न्यायालय ने राय दी कि प्रावधान को अनुचित या मनमाना नहीं माना जा सकता है और इसलिए, केवल इसलिए असंवैधानिक है क्योंकि शक्ति के साथ निहित प्राधिकरण उसके अधिकार का दुरुपयोग कर सकता है।

प्राधिकरण।(मंजूर अली खान बनाम भारत संघ और अन्य, (2015) 2 एस. सी. सी. 33 भी देखें।"

(जोर दिया गया) 41। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि विधानमंडल ने अपने विवेक से एक गिरफ्तार व्यक्ति के लिए उसकी स्वतंत्रता और बाहरी अनुमोदन और पर्यवेक्षण की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सचेत रूप से आवश्यक सुरक्षा उपाय बनाए हैं। यह प्रावधान भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 21 और 22 (2) के अनुपालन में है।

धारा 62

"कानून को तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि भय उनका समर्थन नहीं करता।" - सोफोकल्स

"62. परेशान करने वाली खोज के लिए सजा।— कोई भी प्राधिकरण या अधिकारी

इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जो बिना लिखित रूप में दर्ज किए गए कारणों के बिना -

(क) किसी भवन या स्थान की तलाशी या कारण; या (ख) किसी व्यक्ति को हिरासत में लेता है या तलाशी लेता है या गिरफ्तार करता है,

ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए दो वर्ष तक के कारावास या पचास हजार रुपये तक के कारावास या दोनों के लिए दोषी ठहराया जा सकता है।"

42. यह प्रावधान पीएमएलए, 2002 की धारा 19 के अनिवार्य अनुपालन की पुनरावृत्ति है। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के अधिदेश का कड़ाई से अक्षरशः पालन करना संबंधित अधिकारी के लिए एक चेतावनी की प्रकृति है, जिसमें विफल रहने पर उसे परिणाम भुगतने होंगे। यह उसका परम कर्तव्य है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचने के अपने विश्वास के कारणों को दर्ज करे कि कोई व्यक्ति दोषी है और इसलिए उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए। इस तरह की सुरक्षा निष्पक्षता और जवाबदेही के एक तत्व को सुविधाजनक बनाने के लिए है।

43. धारा 65

"65. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 लागू करने के लिए।— के प्रावधान

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2), जहां तक वे इस अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं, इस अधिनियम के तहत गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती, कुर्की, विश्वासघात, जांच, अभियोजन और अन्य सभी कार्यवाही के लिए लागू होगी।

धारा 65 गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती आदि के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुप्रयोग का प्रावधान करती है। सी. आर. पी. सी., 1973 के प्रावधान मुख्य रूप से प्रक्रियात्मक प्रकृति के होने के कारण, मूल तत्वों के साथ, तब तक लागू किए जाने हैं, जब तक कि वे पी. एम. एल. ए., 2002 के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं। इसलिए, पी. एम. एल. ए., 2002 को प्राथमिकता दी जाएगी और जब कोई विसंगति नहीं होगी, तो एक प्रक्रियात्मक सहायता का सहारा लिया जा सकता है, जैसा कि सी. आर. पी. सी., 1973 के तहत उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, सी. आर. पी. सी., 1973 के प्रावधानों के पी. एम. एल. ए., 2002 के प्रावधानों के पूरक होने की उम्मीद है। 44. इस प्रावधान को समझने के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 4 और 5 पर ध्यान देना उचित होगा:

खंड 4

"4. भारतीय दंड संहिता और अन्य कानूनों के तहत मुकदमा चलाया जाता है।—

(1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के तहत सभी मामलों की जांच की जाएगी, जांच की जाएगी, मुकदमा चलाया जाएगा और अन्यथा इसके बाद के प्रावधानों के अनुसार निपटा जाएगा।

(2) किसी भी अन्य कानून के तहत सभी मामलों की जांच, जांच, मुकदमा चलाया जाएगा और अन्यथा उन्हीं प्रावधानों के अनुसार निपटा जाएगा, लेकिन उस समय के लिए किसी भी अधिनियम के अधीन जो जांच, पूछताछ, प्रयास या अन्यथा ऐसे मामलों से निपटने के तरीके या स्थान को विनियमित करता है।"

खंड 5

“5. बचत हो रही है।— इस संहिता में निहित कुछ भी, इसके विपरीत एक विशिष्ट सी प्रावधान के अभाव में, उस समय लागू किसी विशेष या स्थानीय कानून, या किसी विशेष क्षेत्राधिकार या शक्ति को, या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा निर्धारित किसी विशेष प्रकार की प्रक्रिया को लागू नहीं करेगा।”

879

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 880

45. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 4 की उप-धारा (2) इस तथ्य को बढ़ाती है कि कोई भी जांच या जांच, उनकी प्रक्रिया के साथ, अनिवार्य रूप से केवल उस कानून के तहत होनी चाहिए न कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के तहत। उपरोक्त स्थिति को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 5 के तहत दोहराया गया है, जिसके तहत एक स्पष्ट स्पष्टीकरण दिया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 विशेष कानून के संचालन में बाधा नहीं बनेगी। इस प्रकार, पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 65 के साथ-साथ सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 4 और 5 को संयुक्त रूप से पढ़ने से जांच के मामले में पी. एम. एल. ए. की प्राथमिकता पर संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहती है।

धन शोधन अधिनियम, 2002 की रोकथाम के तहत परिकल्पित प्राधिकरण की भूमिका:

46. पी. एम. एल. ए., 2002 एक विशिष्ट और विशेष कानून है जिसका अपना उद्देश्य है। पी. एम. एल. ए., 2002 की योजना में धन शोधन की रोकथाम और कार्रवाई दोनों का प्रावधान है। इसका उद्देश्य लॉन्ड्रिंग को रोकना और जब ऐसा होता है तो उसे ठीक करना है, जबकि बंद करने वाले को सजा देना है। उस प्रक्रिया में, एकत्र की गई सामग्री का उपयोग और आदान-प्रदान किसी भी उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जांच और जांच के लिए समान सामग्री हो सकती है, जबकि अतिरिक्त सामग्री पर निर्भर रहने पर कोई रोक नहीं है। वे एक ही चैनल में यात्रा कर सकते हैं, लेकिन उनके गंतव्य अलग-अलग हैं। एक सामग्री का उपयोग कई अन्य उद्देश्यों के साथ दोनों उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। जब तक वे एक साथ यात्रा करते हैं, तब तक जाँच और जाँच के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होता है। जब वे अलग-अलग मार्ग अपनाते हैं, तो एक जांच न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के समक्ष समाप्त हो जाती है, जबकि दूसरी शिकायत के रूप में एक विशेष अदालत की ओर ले जाती है। इस अंतर को ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि किसी भी संभावित टकराव या भ्रम से बचा जा सके। विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर): “27. साक्ष्य के संग्रह के लिए 2002 के अधिनियम के तहत केंद्र सरकार द्वारा अधिकृत निदेशक या प्राधिकरण का कार्य न्यायनिर्णयन कार्यवाही की आंतरिक प्रक्रिया है। इसमें, अधिकारियों द्वारा इस प्रकार एकत्र किए गए साक्ष्य को इस मुद्दे के निर्धारण के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के समक्ष रखा जाता है कि क्या धारा 5 के तहत जारी अस्थायी कुर्की आदेश को स्वीकार करने और विचाराधीन संपत्ति के हस्तांतरण का निर्देश देने के योग्य है। अभिव्यक्ति

“इसलिए, जांच को न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के समक्ष इस तरह के साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अधिकारियों द्वारा की जाने वाली “जांच” के कार्य के साथ विनिमेय माना जाना चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

28. दूसरे शब्दों में, केवल इसलिए कि उपयोग की गई अभिव्यक्ति “जांच” है—जो 1973 की संहिता की धारा 2 (एच) में उल्लिखित के समान है, यह खुद को अधिनियम और विशेष रूप से धारा 3 के तहत अपराध से संबंधित जांच के मामले तक सीमित नहीं रखता है। यह है।

एक अलग मामला है कि अधिकारियों द्वारा जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री का उपयोग उस व्यक्ति के खिलाफ शिकायत में आरोप को मजबूत करने के लिए किया जाता है जिससे संपत्ति बरामद की गई है, जो अपराध की आय है। इसके अलावा, 2002 के अधिनियम में उपयोग की गई “जांच” अभिव्यक्ति अधिनियम के तहत अधिकारियों द्वारा की जाने वाली “जांच” के कार्य के साथ विनिमेय है, जिसमें अनंतिम कुर्की आदेश को स्वीकार करने के लिए न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को प्रस्तुत करने के लिए साक्ष्य का संग्रह शामिल है। हमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि 2002 के अधिनियम के प्रावधानों का विस्तार धन-शोधन की रोकथाम, अपराध की आय की कुर्की, न्यायनिर्णयन और उसे केंद्र सरकार में निहित करने और धन-शोधन से निपटने के उपायों के समन्वय के लिए एजेंसी और तंत्र की स्थापना सहित है।”

(जोर दिया गया) 47।पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के तहत गिरफ्तारी की शक्ति केवल जांच के लिए है। एक स्पष्ट स्थिति जिस पर विजय में ध्यान दिया गया है

मदनलाल चौधरी (ऊपर): **"89.** यह तर्क स्पष्ट रूप से **2002** के अधिनियम की समग्र योजना की अनदेखी करता है। जैसा कि पहले देखा गया है, यह एक व्यापक कानून है, जो धन-शोधन में शामिल व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा चलाने तक सीमित नहीं है, बल्कि मुख्य रूप से धन-शोधन गतिविधि को रोकने और धन-शोधन में शामिल अपराध की आय को सीमित करने के उद्देश्य से है। इसमें धन शोधन की ऐसी गतिविधि में शामिल व्यक्ति पर मुकदमा चलाने का भी प्रावधान है। दूसरे शब्दों में, यह कानून धन-शोधन से निपटने के उपायों के समन्वय के लिए एजेंसियों और तंत्रों की स्थापना सहित विभिन्न पहलुओं का एक समामेलन है। अध्याय **III** संलग्नक, न्यायनिर्णयन और विश्वास द्वारा इन उद्देश्यों और उद्देश्यों को पूरा करने का एक प्रावधान है। न्यायनिर्णायक प्राधिकरण द्वारा **881** के आदेश को स्वीकार करने के लिए निर्णय लिया जाता है।

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. **882** सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

धन-शोधन में शामिल अपराध की आय के संबंध में अस्थायी कुर्की। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए, अध्याय **VIII** के तहत नियुक्त अधिकारियों को सर्वेक्षण, तलाशी और अभिलेखों और संपत्ति की जब्ती के माध्यम से सभी मामलों की जांच करने के लिए अधिकृत किया गया है। ये प्रावधान किसी भी तरह से **2002** के अधिनियम के अध्याय **VIII** में निर्दिष्ट प्राधिकरणों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने या उस मामले के लिए विशुद्ध रूप से आपराधिक अपराध की जांच करने की शक्ति का निवेश नहीं करते हैं। **2002** के अधिनियम के तहत अधिकारियों द्वारा शिकायत की अंतिम भाषा से पहले की गई जांच, उनके द्वारा की गई जांच की झलक हो सकती है। हालाँकि, यह अनिवार्य रूप से साक्ष्य एकत्र करने के लिए एक जांच है ताकि न्यायनिर्णायक प्राधिकरण को अनंतिम कुर्की आदेश को स्वीकार करने पर निर्णय लेने में सुविधा हो सके, जिसमें अपराध का आदेश पारित करना भी शामिल है, जिसके परिणामस्वरूप, अपराध की आय **2002** के अधिनियम की धारा **9** के संदर्भ में केंद्र सरकार में निहित होगी। दूसरे शब्दों में, **2002** के अधिनियम के अध्याय **VIII** के तहत नियुक्त प्राधिकरणों की भूमिका ऐसी है कि उन्हें **2002** के अधिनियम के अध्याय **III** और **V** के तहत उन्हें प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायनिर्णायक प्राधिकरण के समक्ष न्यायनिर्णयन कार्यवाही को सुविधाजनक बनाने के लिए जांच करने और साक्ष्य एकत्र करने की दोहरी भूमिका का काम सौंपा गया है और साथ ही **2002** के अधिनियम के तहत विशेष अदालत के समक्ष धन-शोधन के लिए औपचारिक शिकायत के माध्यम से संबंधित व्यक्ति के खिलाफ आरोप को मजबूत करने के लिए उन्हीं सामग्रियों का उपयोग करना है, यदि तथ्य स्थिति ऐसी है। ऐसा नहीं है कि हर जांच के बाद धन शोधन के अपराध में शामिल पाए जाने वाले सभी व्यक्तियों के खिलाफ अभियोजन शुरू किया जाता है। कथित आपराधिक गतिविधि में लिप्त होने के लिए शिकायत दर्ज करने से पहले इस तरह की जांच के दौरान किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी का प्रावधान करना भी असामान्य नहीं है। प्रत्यर्थी ने अन्य विधानों में कुछ हद तक इसी तरह के प्रावधानों को उचित रूप से स्वीकार किया है, जैसे कि एफ. ई. आर. ए. की धारा **35** और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा **102**, जिसमें इस न्यायालय के निर्णय शामिल हैं, जो संबंधित विधानों में अधिकारियों को दी गई जांच स्तर पर गिरफ्तारी की ऐसी शक्ति को बरकरार रखते हैं। रोमेश चंद्र में

मेहता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1969) 2 एससीआर **461**: ए. आई. आर. **1970** एससी

940, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने स्पष्ट किया कि सीमा शुल्क अधिनियम की धारा **104** सीमा शुल्क को गिरफ्तार करने की शक्ति प्रदान करती है

यदि उसके पास यह मानने का कारण है कि भारत में या भारतीय सीमा शुल्क जल क्षेत्र के भीतर कोई भी व्यक्ति उस अधिनियम की धारा **135** के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है। एक बार फिर मामले में

भारत संघ बनाम पदम नारायण अग्रवाल और अन्य (2008) **13** एस. सी. सी.

305, सीमा शुल्क अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करते हुए, इसने नोट किया कि "गिरफ्तारी" शब्द को न तो **1973** की संहिता में और न ही भारतीय दंड संहिता, **1860** में और न ही अपराधों से संबंधित किसी अन्य अधिनियम में अवहेलना की गई है। यह शब्द फ्रांसीसी शब्द "अरेस्टर" से लिया गया है जिसका अर्थ है "रुकना या रहना"। यह एक व्यक्ति के संयम को दर्शाता है। इस प्रकार, यह व्यक्ति को कानून का पालन करने के लिए बाध्य करता है। इसके अलावा, गिरफ्तारी को "कानून की अदालत या विधिवत अधिकृत अधिकारी के आदेश के निष्पादन" के रूप में माना जा सकता है। यहां तक कि यह निर्णय

संबंधित कानूनों के तहत की जाने वाली जांच के दौरान गिरफ्तारी करने के लिए अधिकृत अधिकारी की शक्ति को मान्यता देता है। इस तरह की गिरफ्तारी को लागू करने से पहले उस कानून के तहत प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया:

“सत्ता के दुरुपयोग के खिलाफ सुरक्षा उपाय

36. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि सीमा शुल्क अधिकारी द्वारा किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति वैधानिक है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। गिरफ्तारी की ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल उन मामलों में किया जा सकता है जहां सीमा शुल्क अधिकारी के पास "विश्वास करने का कारण" है कि कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 132, 133, 135, 135-ए या 136 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है। इस प्रकार, शक्ति का प्रयोग गणना किए गए अपराध के वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर किया जाना चाहिए और सीमा शुल्क कार्यालय के पास यह विश्वास करने का कारण है कि गिरफ्तार किए जाने की मांग करने वाला व्यक्ति इस तरह के अपराध का दोषी रहा है। इस प्रकार गिरफ्तार करने की शक्ति वस्तुनिष्ठ विचारों द्वारा सीमित है और इसका प्रयोग अधिकारी की सनक, सनक या कल्पना पर नहीं किया जा सकता है।

37. खंड एड: सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 104 सीमा शुल्क अधिकारी को गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार के बारे में जल्द से जल्द सूचित करने के लिए भी बाध्य करती है। कानून के अनुसार ऐसे व्यक्ति को बिना किसी अनावश्यक देरी के मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना चाहिए। 38. इस प्रकार कानून, एक ओर, सीमा शुल्क अधिकारी को उस व्यक्ति को गिरफ्तार करने की शक्ति का प्रयोग करने की अनुमति देता है जिसने कुछ 883 अपराध किए हैं।

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 884

दूसरी ओर, अपराध, मानदंडों को निर्धारित करके और सुरक्षा उपाय प्रदान करके व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए उचित ध्यान रखते हैं ताकि अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी की शक्ति का दुरुपयोग या दुरुपयोग न हो।...."

× × ×

× × ×

× × ×

“169. विशेष रूप से, यह द्विभाजन 2002 के अधिनियम में एक से अधिक कारणों से मौजूद नहीं है। क्योंकि, नियमित पुलिस अधिकारी की कोई भूमिका नहीं है।द.

जाँच केवल 2002 के अधिनियम के तहत अधिकारियों द्वारा की जानी है और जाँच के समापन पर, विशेष न्यायालय के समक्ष शिकायत दर्ज की जानी है। इसके अलावा, 2002 के अधिनियम की धारा 44 (1) में स्पष्टीकरण के खंड (ii) के आधार पर, इस अधिनियम के तहत अधिकारियों के लिए यह खुला है कि वे धन शोधन के संबंध में शामिल किसी भी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ कोई और मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य ला सकते हैं, जिसके लिए, उसके द्वारा या शिकायत में नामित व्यक्ति के खिलाफ पहले ही शिकायत की जा चुकी है और कानूनी दंड द्वारा, ऐसी आगे की शिकायत को मूल रूप से दायर शिकायत का हिस्सा माना जाता है। आश्चर्यजनक रूप से, टी. ओफान सिंह बनाम तमिलनाडु राज्य, (2021) 4 एस. सी. सी. 1 में, न्यायालय ने यह भी कहा कि एन. डी. पी. एस. अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करते समय, नामित अधिकारी के पास पुलिस अधिकारी को दी गई शक्ति के विपरीत समापन रिपोर्ट दर्ज करने की कोई स्पष्ट शक्ति नहीं है, अगर उसने एन. डी. पी. एस. अधिनियम के तहत उसी अपराध की जांच की थी। एक बार फिर, बंद करने की रिपोर्ट देने के अधिकार की यह कमी 2002 के अधिनियम में नहीं है। क्योंकि, धारा 44 (1) (बी) में परंतुक के आधार पर, जांच के समापन के बाद, यदि धन शोधन का कोई कारण नहीं बनता है, तो अधिनियम के तहत प्राधिकरण से ऐसी शिकायत दर्ज करने की अपेक्षा की जाती है, उस संबंध में विशेष न्यायालय के समक्ष समापन रिपोर्ट दर्ज करने की अनुमति है। उस निर्णय में एन. डी. पी. एस. अधिनियम की धारा 67 के प्रावधानों का विश्लेषण करते हुए अदालत ने कहा कि उस अधिनियम की धारा 67 के तहत दर्ज किए गए बयान को अस्वीकार्य माना जाना चाहिए।

सभी स्थितियों में। यह उसी अधिनियम की धारा 53 ए को अनुचित बनाता है। एन. डी. पी. एस. अधिनियम की धारा 53 ए कुछ परिस्थितियों में दिए गए बयान की प्रासंगिकता के बारे में है। दोनों प्रावधानों में उभरने वाली परस्पर विरोधी स्थिति को महसूस करते हुए, इस मुद्दे का जवाब दिया गया।” (जोर दिया गया)

[2023] 12 एस सी आर।

48. अन्यथा, गिरफ्तारी को सजा कहा जाएगा, जो शक्ति कभी भी पीएमएलए, 2002 की धारा 19 के तहत नहीं हो सकती है। यह स्थिति दिन की रोशनी की तरह स्पष्ट होने के कारण, पीएमएलए, 2002 की धारा 44 (1) (बी) का प्रावधान इसमें और अधिक अंतर्दृष्टि देता है।

धारा 44

“44. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारण योग्य मामले।— (1) इसके बावजूद

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित कुछ भी -

× × ×

× × ×

× × ×

(ख) एक विशेष न्यायालय, इस अधिनियम के तहत इस ओर से अधिकृत एक प्राधिकरण द्वारा की गई शिकायत पर, धारा 3 के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है, जिसमें आरोपी को मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध नहीं किया गया है:

बशर्ते कि जाँच के समापन के बाद, यदि धन-शोधन का कोई अपराध नहीं बनता है जिसके लिए ऐसी शिकायत के आधार की आवश्यकता होती है, तो उक्त प्राधिकारी विशेष न्यायालय के समक्ष समापन रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा; या।

49. इसलिए, पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 (1) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल जांच के दौरान किया जा सकता है और यह प्राधिकरण के लिए अच्छी तरह से खुला है कि वह निष्कर्ष के बाद विशेष न्यायालय के समक्ष एक समापन रिपोर्ट दाखिल कर सकता है, अगर यह मानता है कि आगे बढ़ने के लिए कोई पर्याप्त सामग्री नहीं है।

अपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167:

“न्याय, यद्यपि अभियुक्त के कारण है, अभियुक्त के कारण भी है”-यू. एस. सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति बेंजामिन एन. कार्डोजो

धारा 167

“167. प्रक्रिया जब जांच बीस में पूरी नहीं की जा सकती है -

चार घंटे।— (1) जब भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और हिरासत में रखा जाता है, और ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 57 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं की जा सकती है, और यह विश्वास करने के लिए आधार है कि आरोप या जानकारी अच्छी तरह से स्थापित है, तो पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी या पुलिस अधिकारी जांच कर रहा है, यदि वह उप-निरीक्षक के पद से नीचे नहीं है, 885

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 886

मामले के संबंध में इसके बाद निर्धारित डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को तुरंत प्रेषित करेगी, और साथ ही आरोपी को ऐसे मजिस्ट्रेट को भी भेजेगी।

(2) जिस मजिस्ट्रेट को इस धारा के तहत एक आरोपी व्यक्ति को भेजा जाता है, वह समय-समय पर, चाहे उसके पास मामले की सुनवाई करने की अधिकारिता हो या न हो, आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है जो ऐसा मजिस्ट्रेट समझता है कि कुल मिलाकर पंद्रह दिनों से अधिक की अवधि के लिए नहीं है और यदि उसे मामले की सुनवाई करने या मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध करने की कोई अधिकारिता नहीं है, और वह आगे हिरासत को अनावश्यक समझता है, तो वह आरोपी को ऐसी अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है: बशर्ते कि -

(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस की अभिरक्षा के अलावा पंद्रह दिनों की अवधि के बाद हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है, यदि उसे संतुष्ट किया जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं, लेकिन कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति को इस अनुच्छेद के तहत हिरासत में रखने के लिए अधिकृत नहीं करेगा।

(i) नब्बे दिन, जहां जांच मौत, आजीवन कारावास या दस साल से कम की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है;

((ख) साठ दिन, जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध से संबंधित है, और, यथास्थिति, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत देता है, और इस उप-धारा के तहत जमानत पर रिहा किया गया प्रत्येक व्यक्ति उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत इस तरह से रिहा किया गया समझा जाएगा;

(ख) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत पुलिस की हिरासत में आरोपी को तब तक हिरासत में रखने के लिए अधिकृत नहीं करेगा जब तक कि आरोपी को पहली बार उसके सामने व्यक्तिगत रूप से पेश नहीं किया जाता है और बाद में हर बार जब तक कि आरोपी पुलिस की हिरासत में नहीं रहता है, लेकिन मजिस्ट्रेट आरोपी को व्यक्तिगत रूप से या इलेक्ट्रॉनिक वीडियो लिंकेज के माध्यम से पेश करने पर न्यायिक हिरासत में और हिरासत बढ़ा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

(ग) द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त नहीं है, पुलिस की अभिरक्षा में निरोध को अधिकृत नहीं करेगा।

स्पष्टीकरण 1-शंकाओं से बचने के लिए, एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि पैराग्राफ (ए) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के बावजूद, अभियुक्त को तब तक हिरासत में रखा जाएगा जब तक कि वह जमानत नहीं देता है।

स्पष्टीकरण 2.-यदि कोई प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या किसी अभियुक्त व्यक्ति को खंड (ख) के तहत आवश्यकतानुसार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, तो आरोपी व्यक्ति को पेश करने को हिरासत को अधिकृत करने वाले आदेश पर उसके हस्ताक्षर या मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित आदेश द्वारा साबित किया जा सकता है कि आरोपी व्यक्ति को इलेक्ट्रॉनिक वीडियो लिंकेज के माध्यम से पेश करने के बारे में, जैसा भी मामला हो।

बशर्ते कि अठारह वर्ष से कम आयु की महिला के मामले में, निरोध को रिमांड होम या मान्यता प्राप्त सामाजिक संस्थान की अभिरक्षा में रहने के लिए अधिकृत किया जाएगा।

× × ×

× × ×

× × ×

(3) पुलिस की हिरासत में इस धारा के तहत हिरासत को अधिकृत करने वाला मजिस्ट्रेट ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।"

50. इस सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान पर विचार करने से पहले, आइए हम दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (इसके बाद "सीआरपीसी, 1898" के रूप में संदर्भित) और सीआरपीसी, 1973 के बीच तुलना करें।

सी. आर. पी. सी. की धारा 167 पर समझौता चार्टर।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 167 पर	आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 167
--	---

167. प्रक्रिया जब जांच चौबीस घंटे में पूरी नहीं की जा सकती है: (1) जब भी यह प्रतीत होता है कि इस अध्याय के तहत कोई जांच धारा 61 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है, और यह विश्वास करने के लिए आधार हैं कि आरोप या जानकारी अच्छी तरह से आधारित है, तो प्रभारी अधिकारी	167. प्रक्रिया जब जांच चौबीस घंटे में पूरी नहीं की जा सकती है: (1) जब भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और हिरासत में रखा जाता है, और ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 57 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं की जा सकती है, और यह विश्वास करने के लिए आधार हैं कि आरोप या जानकारी
--	---

887

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 888 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

पुलिस-स्टेशन तत्काल निकटतम मजिस्ट्रेट को मामले के संबंध में इसके बाद निर्धारित डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति भेजेगा और साथ ही आरोपी (यदि कोई हो) को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेजेगा।	यदि पुलिस थाना का प्रभारी अधिकारी या जांच करने वाला पुलिस अधिकारी, यदि वह उपनिरीक्षक के पद से नीचे नहीं है, तो मामले से संबंधित इसके बाद निर्धारित डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति तुरंत निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को प्रेषित करेगा और साथ ही आरोपी को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा।
(2) मजिस्ट्रेट, जिसे इस धारा के तहत एक अभियुक्त व्यक्ति भेजा जाता है, समय-समय पर अभियुक्त को ऐसी हिरासत में रखने के लिए प्राधिकृत	(2) जिस मजिस्ट्रेट को इस धारा के तहत एक आरोपी व्यक्ति को भेजा जाता है, वह समय-समय पर, चाहे उसके पास मामले की सुनवाई

कर सकता है, जो ऐसे मजिस्ट्रेट को पूरी तरह से पंद्रह दिनों से अधिक की अवधि के लिए नहीं लगती है। यदि उसके पास मामले की सुनवाई करने या मुकदमे के लिए इसे करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है, और वह आगे हिरासत को अनावश्यक समझता है, तो वह आरोपी को ऐसे अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है।	करने की अधिकारिता हो या न हो, आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने को अधिकृत कर सकता है जो ऐसा मजिस्ट्रेट समझता है कि कुल मिलाकर पंद्रह दिनों से अधिक की अवधि के लिए नहीं है और यदि उसे मामले की सुनवाई करने या मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध करने की कोई अधिकारिता नहीं है, और वह आगे हिरासत को अनावश्यक समझता है, तो वह आरोपी को ऐसी अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है: बशर्ते कि-(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति को पुलिस की अभिरक्षा से भिन्न, पंद्रह दिनों की अवधि के बाद हिरासत में रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं, लेकिन कोई भी मजिस्ट्रेट इस अनुच्छेद के तहत अभिरक्षा में अभियुक्त व्यक्ति को कुल अवधि से अधिक के लिए हिरासत में रखने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा-(i) नब्बे दिन, जहां जांच मौत,
--	--

	आजीवन कारावास या दस साल से कम की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है; (ii) साठ दिन, जहां जांच किसी अन्य नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, जैसा भी मामला हो।
--	---

	इस उप-धारा के तहत जमानत पर रिहा किया गया व्यक्ति उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत इस तरह से रिहा किया गया समझा जाएगा; (बी) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत पुलिस की हिरासत में आरोपी को तब तक हिरासत में नहीं लेगा जब तक कि आरोपी को पहली बार व्यक्तिगत रूप से उसके सामने पेश नहीं किया जाता है और बाद में हर बार जब तक कि आरोपी पुलिस की हिरासत में नहीं रहता है, लेकिन मजिस्ट्रेट आरोपी को व्यक्तिगत रूप से या इलेक्ट्रॉनिक वीडियो लिंक के माध्यम से पेश करने पर न्यायिक हिरासत में और हिरासत बढ़ा सकता है;) (सी) द्वितीय श्रेणी का
--	---

कोई भी मजिस्ट्रेट,
 जिसे उच्च
 न्यायालय द्वारा
 इस संबंध में विशेष
 रूप से अधिकार
 नहीं दिया गया है,
 पुलिस की हिरासत
 में हिरासत को
 अधिकृत नहीं
 करेगा। स्पष्टीकरण
 एन. आई. —संदेह
 से बचने के लिए,
 एतद्द्वारा यह
 घोषित किया जाता
 है कि पैराग्राफ (ए)
 में निर्दिष्ट अवधि
 की समाप्ति के
 बावजूद, आरोपी
 को तब तक
 हिरासत में रखा
 जाएगा जब तक
 कि वह जमानत
 नहीं देता है।
 स्पष्टीकरण 2.-
 यदि कोई प्रश्न
 उत्पन्न होता है कि
 क्या किसी
 अभियुक्त व्यक्ति
 को खंड (ख) के
 तहत
 आवश्यकतानुसार
 मजिस्ट्रेट के समक्ष
 पेश किया गया था,
 तो आरोपी व्यक्ति
 को पेश करने को
 हिरासत को
 अधिकृत करने
 वाले आदेश पर
 उसके हस्ताक्षर या
 मजिस्ट्रेट द्वारा
 प्रमाणित आदेश
 द्वारा साबित किया
 जा सकता है कि
 आरोपी व्यक्ति को
 इलेक्ट्रॉनिक
 वीडियो लिंकेज के
 माध्यम से पेश
 करने के बारे में,
 जैसा भी मामला
 हो। बशर्ते कि
 अठारह वर्ष से कम
 आयु की महिला के
 मामले में, निरोध
 को रिमांड होम या
 मान्यता प्राप्त
 सामाजिक संस्थान

की अभिरक्षा में
रहने के लिए
अधिकृत किया
जाएगा।

889

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 890

(3) पुलिस की हिरासत में इस धारा के तहत हिरासत को अधिकृत करने वाला मजिस्ट्रेट ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।	(3) पुलिस की हिरासत में इस धारा के तहत हिरासत को अधिकृत करने वाला मजिस्ट्रेट ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।
(4) यदि ऐसा आदेश जिला मजिस्ट्रेट या उपमंडलीय-मजिस्ट्रेट के अलावा किसी अन्य मजिस्ट्रेट द्वारा दिया जाता है, तो वह अपने आदेश की एक प्रति, इसे बनाने के अपने कारणों के साथ, उस मजिस्ट्रेट को भेजेगा, जिसके वह तुरंत अधीनस्थ है।	(4) ऐसा आदेश देने वाले मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के अलावा कोई भी मजिस्ट्रेट अपने आदेश की एक प्रति, इसे बनाने के अपने कारणों के साथ, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजेगा।

जैसा कि हम देख सकते हैं, प्रावधान के बीच कोई अंतर नहीं है जैसा कि पहले और अब मौजूद था, सिवाय एक परंतुक के जोड़ के, जिसके बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे।

51. इस प्रावधान में आगे की जांच को सुविधाजनक बनाते हुए स्वतंत्रता के बीज बोए जाते हैं, जब यह संतुष्ट किया जाता है कि इसे 24 घंटे के भीतर पूरा नहीं किया जा सकता है। यह केवल एक प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं है, बल्कि इसकी मूलता का एक अंतर्निहित तत्व है। एक निष्पक्ष खेल को सुविधाजनक बनाते हुए, इसे भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 21 और 22 (2) के एक अंग के रूप में पेश किया गया है।

52. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उप-धारा (1) के तहत, एक सक्षम अधिकारी अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास तब भेजेगा जब यह प्रतीत होता है कि जांच 24 घंटे के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है। उप-धारा (1) के तहत परिकल्पित दो कारक महत्वपूर्ण हैं। वे हैं, यह एक ऐसा मामला होना चाहिए जहां किसी आरोपी की गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर जांच पूरी नहीं की जा सकती है और उसे मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाना है, जिसका अर्थ है कि वह जांच एजेंसी से न्यायिक हिरासत में आता है। इस प्रावधान के पीछे का उद्देश्य और तर्क स्पष्ट है। अभिरक्षा को 24 घंटे तक सीमित करके, अभियुक्त की स्वतंत्रता पर मजिस्ट्रेट के रूप में एक स्वतंत्र प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना और उस पर ध्यान दिया जाना है। यह गिरफ्तारी पर मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकारोक्ति का एक कार्य भी है, जिसके बाद एक आरोपी व्यक्ति को हिरासत में दिया जाता है।

53. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उप-धारा (2) मजिस्ट्रेट की शक्ति से संबंधित है। ऐसे मजिस्ट्रेट के पास किसी मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र हो भी सकता है और नहीं भी। किसी भी रूप में अधिकारिता का कोई सवाल नहीं है जो मजिस्ट्रेट के उक्त शक्ति का प्रयोग करने के रास्ते में खड़ा हो। केवल एक पदनाम से वह ऐसी शक्ति ग्रहण करता है। यही कारण है कि

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

स्वतंत्रता सर्वोपरि है और कोई भी देरी इसे कम करने के बराबर होगी। इससे आगे की जांच में भी देरी हो सकती है। "समय-समय पर" शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि अभिरक्षा देने की शक्ति रिमांड के पहले 15 दिनों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जांच की पूरी अवधि है। यह पुलिस अभिरक्षा के विरुद्ध न्यायिक अभिरक्षा के लिए संदर्भित नहीं है। इसका अर्थ केवल "जैसे ही अवसर आता है" है, जो जांच के दृष्टिकोण से है। इस प्रकार, जब एक जांच से आरोपी के साथ सामना करने के लिए नई सामग्री का पता चलता है, तो मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के अधीन हिरासत की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है। राजस्थान राज्य में बनाम.

बसंत एगोटेक (इंडिया) लिमिटेड, (2013) 15 एस. सी. सी. 1 इस न्यायालय ने

शब्द "समय-समय पर": 50. द लॉ लेक्सिकन में, द एनसाइक्लोपेडिक लॉ डिक्शनरी (दूसरा)

एडन., 1997, पी. 764) शब्दों को निम्नलिखित अर्थ प्रदान किया गया है:

"समय-समय पर।— ... 'जैसे-जैसे अवसर आए'।

'समय-समय पर' शब्दों का अर्थ है कि जब भी अवसर की आवश्यकता हो, स्थगन किया जा सकता है और उनका अर्थ एक दिन से दूसरे दिन के लिए स्थगन नहीं होगा।...

"'समय-समय पर' शब्द ऐसे शब्द हैं जिन्हें लगातार पेश किया जाता है जहां इसका उद्देश्य एक ऐसे व्यक्ति की रक्षा करना है जो एक बार कार्य करने के बाद अपने कर्तव्य का पूरी तरह से निर्वहन करने के जोखिम से कार्य करने के लिए सशक्त है, और इसलिए उसी दिशा में फिर से कार्य करने में सक्षम नहीं है।' 'समय-समय पर' शब्दों का अर्थ यह है कि एक बार कार्य करने के बाद शक्ति का कर्ता फिर से कार्य कर सकता है; और या तो स्वतंत्र रूप से, या अपने पिछले कार्य को जोड़कर, या उससे लेकर, या पूरी तरह से उलट कर।"

51. ब्लैक लॉ डिक्शनरी में (5 वां संस्करण। पी. 601), इसे निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

"समय-समय पर।— कभी-कभी, अंतराल पर, अब और फिर।"

52. स्ट्राउड्स जुडिशल डिक्शनरी में (5 वां संस्करण, खंड 2, पी. 1071), यह निम्नानुसार कहा गया है:

891

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 892 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

"समय-समय पर।— ... '(विलियम, जे., ब्रायन बनाम आर्थर [(1839) 11 एडी एंड ई 108 के अनुसार: 113 ई. आर. 354] पी. पर विज्ञापन और ई. 117)."

(जोर दिया गया) एक अभियुक्त की नजरबंदी को अधिकृत करते समय, मजिस्ट्रेट को बहुत व्यापक विवेकाधिकार मिला है। इस तरह का कार्य एक न्यायिक कार्य है और इसलिए, विवेक के प्रयोग का संकेत देने वाला एक तर्कपूर्ण आदेश निश्चित रूप से आवश्यक है। वह अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए निरोध को अधिकृत कर सकता है या नहीं भी कर सकता है। जांच एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके लिए समय-समय पर सक्षम न्यायालय द्वारा अधिकृत अभियुक्त की अभिरक्षा की आवश्यकता हो सकती है। आम तौर पर, किसी अन्य न्यायालय से उस प्रक्रिया में पर्यवेक्षी प्राधिकरण के रूप में कार्य करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। प्राधिकरण का एक कार्य हिरासत की आवश्यकता को पूर्व-मानता है। पुलिस अभिरक्षा की ऐसी आवश्यकता एक मजिस्ट्रेट के आदेश से होनी चाहिए जो उसे अधिकृत करता है।

54. शब्द "ऐसी अभिरक्षा जो इस तरह के मजिस्ट्रेट को लगता है"

उसके लिए उपलब्ध विवेक की सीमा को दोहराएँ। हिरासत के सवाल का फैसला करना संबंधित मजिस्ट्रेट का काम है, चाहे वह न्यायिक हो या किसी जांच एजेंसी या किसी दिए गए मामले में किसी अन्य संस्था के लिए।

55. "ऐसी अभिरक्षा" शब्दों की व्याख्या करते हुए, विधि आयोग ने अपनी 37 वीं रिपोर्ट में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के तहत समान सामग्री प्रावधानों पर विचार करते हुए कहा है कि मजिस्ट्रेट के पास व्यापक शक्तियां हैं क्योंकि धारा 167 (2) के तहत कोई स्पष्ट प्रतिबंध नहीं है। यह किसी भी जांच एजेंसी को दिया जा सकता है और इसलिए, इसे केवल पुलिस तक सीमित करके संकीर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती है।

"481. धारा 167 के तहत हिरासत के संबंध में रक्षा मंत्रालय के एक सुझाव पर ध्यान दिया जा सकता है। धारा 167 (2) और 344 के तहत, एक मजिस्ट्रेट को किसी भी आरोपी को किसी भी हिरासत में भेजने का अधिकार है, यानी वह उसे पुलिस हिरासत के अलावा किसी और हिरासत में भेज सकता है। यह माना जाता है कि सैन्य, नौसेना या वायु सेना कानून के अधीन अभियुक्त व्यक्तियों को सैन्य, नौसेना या वायु सेना की हिरासत में भेजे जाने की अनुमति दी जा सकती है। वास्तव में, कुछ मामलों में इस तरह की हिरासत का आदेश दिया गया है। ताकि मामले में कोई संदेह न रहे, इसलिए "अभिरक्षा" शब्द के बाद उपरोक्त धाराओं में निम्नलिखित परिवर्धन (यह सुझाव दिया गया है) किए जाने चाहिए:—

"सैन्य, नौसेना या वायु सेना की हिरासत सहित जहां अभियुक्त इनमें से किसी भी सेवा से संबंधित है।"

हमने इस सुझाव पर विचार किया है।

धारा 167 (2) में, उपयोग किए गए शब्द "ऐसी अभिरक्षा में हैं जो मजिस्ट्रेट को लगता है"। ये शब्द बहुत व्यापक हैं।

वास्तव में, धारा 344 के तहत भी यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मजिस्ट्रेट आरोपी को किसी भी हिरासत में भेज सकता है जो वह सोचता है। इसलिए हमारा विचार है कि किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।"

(जोर दिया गया) हम विधि आयोग द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को अपना पूरा महत्व देते हैं क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 न केवल किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए है, बल्कि निष्पक्ष तरीके से जांच को समाप्त करने के लिए भी है। मजिस्ट्रेट द्वारा एक संतुलनकारी कार्य किए जाने की उम्मीद है। 56. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उप-धारा (2) आगे एक

"कुल मिलाकर 15 दिनों से अधिक की अवधि नहीं" शब्दों का संदर्भ।

इस शब्द को उस परंतुक को ध्यान में रखते हुए उद्देश्य से पेश किया गया है जो जांच के निष्कर्ष के लिए एक बाहरी सीमा देता है। इसी तरह,

शब्द "पूरे में 15 दिनों से अधिक नहीं" में समझा जाना चाहिए

बहुत एक ही तरीके से। "संपूर्ण" शब्द का अर्थ है "कुल, विभाजित नहीं, कोई भाग नहीं, संपूर्ण, पूर्ण और पूर्ण"। ग्लेज़ बनाम हार्ट 225 एम. ओ. ऐप। 1205, कैनेसस सिटी कोर्ट ऑफ अपीलस ने "संपूर्ण" शब्द पर विचार किया है: "...यह शब्द कुल के सादे, सामान्य अर्थ के लिए हिंसा करना होगा कि दावेदार, उक्त स्थितियों में प्रकट परिस्थितियों में, चोट के समय, पूरी तरह से कर्मचारी पर निर्भर था।

समर्थन के लिए। कुल शब्द को संपूर्ण के रूप में परिभाषित किया गया है; अविभाजित; संपूर्ण; डिग्री में पूर्ण; पूर्ण; निरपेक्ष।"

(जोर दिया गया) एक अनुक्रम के रूप में, 15 दिनों की अधिकतम हिरासत को जांच की अवधि के दृष्टिकोण से प्रासंगिक रूप से देखा जाना चाहिए जैसा कि परंतुक के तहत प्रदान किया गया है।

57. सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 (2) मजिस्ट्रेट के आदेश से आरोपी को हिरासत में रखने को अधिकृत करती है। यह सचेत रूप से 893 का इलाज करता है।

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 894 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

एक नजरबंदी हिरासत से अलग है। अभिरक्षा या तो अदालत या किसी जांच एजेंसी के पास होगी। हिरासत आम तौर पर केवल एक जांच एजेंसी द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने से पहले की जाती है। न्यायिक होने से हिरासत विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के माध्यम से पुलिस में बदल सकती है। नजरबंदी हिरासत का एक पहलू हो सकता है। हालाँकि, वे एक-दूसरे के पर्याय नहीं हैं। जब हिरासत को अधिकृत किया जाएगा, तो यह हिरासत बन जाएगी। अभिरक्षा का मतलब औपचारिक नहीं है। बल्कि, इसका अर्थ केवल तभी लगाया जा सकता है जब किसी गिरफ्तार व्यक्ति को शारीरिक हिरासत में दिया जाता है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि शारीरिक अभिरक्षा की हमारी व्याख्या केवल दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) पर लागू होती है।

58. संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 16

एस. सी. सी. 623, "अभिरक्षा" शब्द की व्याख्या पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने कई शब्दकोशों पर भरोसा किया है:

"अभिरक्षा का अर्थ

9. दुर्भाग्य से, सीआरपीसी में "हिरासत", "निरोध" या "गिरफ्तारी" शब्दों की अवहेलना नहीं की गई है, और हमें सामान्य और कानूनी भाषा में उनकी रूपरेखा की सराहना करने के लिए कुछ शब्दकोशों का सहारा लेना चाहिए:

9.1. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (ऑनलाइन) ने "हिरासत" को कारावास, निरोध, कारावास, नजरबंदी, कैद; रिमांड, दबाव और धैर्य के रूप में परिभाषित किया है।

9.2. कैम्ब्रिज शब्दकोश (ऑनलाइन) "अभिरक्षा" की स्थिति के रूप में व्याख्या करता है

जेल में रखा जा रहा है, विशेष रूप से त्रयी एल के लिए अदालत जाने की प्रतीक्षा करते हुए।

(जोर दिया गया) 9.3. लॉन्गमैन डिक्शनरी (ऑनलाइन) ने "हिरासत" को "जब किसी को अदालत जाने तक जेल में रखा जाता है, क्योंकि पुलिस को लगता है कि उसने अपराध किया है" के रूप में परिभाषित किया है।

9.4. चैम्बर्स डिक्शनरी (ऑनलाइन) ने स्पष्ट किया है कि अभिरक्षा

"पुलिस द्वारा पकड़े जाने की शर्त; गिरफ्तारी या कारावास; किसी को गिरफ्तार करने के लिए हिरासत में लेना।

9.5. चैम्बर्स थिसॉर्स कई पर्यायवाची शब्दों की आपूर्ति करता है, जैसे कि निरोध, कारावास, कारावास, कैद, गिरफ्तारी, औपचारिक कारावास।

9.6. कोलिन्स कोबुइल्ड इंग्लिश डिक्शनरी फॉर एडवांस लर्नर्स में कहा गया है

जिस व्यक्ति को हिरासत में लिया गया है या हिरासत में लिया गया है या गिरफ्तार किया गया है और उसे तब तक जेल में रखा जा रहा है जब तक कि उस पर अदालत में मुकदमा नहीं चलाया जाता है या यदि किसी को किसी विशेष प्रकार की हिरासत में रखा जा रहा है, तो उसे जेल के समान स्थान पर रखा जा रहा है।

9.7. शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी की उपस्थिति का अनुमान लगाता है

विश्वासघात, कारावास, साहस और यह विशेषता हमारे सामने तथ्यात्मक मैट्रिक्स में पूरी तरह से अनुपस्थित है।

9.8. कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम "एस्केप एंड रिलेटेड ऑफ एनसेस; रेस्क्यू" विषय के तहत कहता है कि

"अभिरक्षा, अपराध की अवहेलना करने वाले कानूनों के अर्थ के भीतर, किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के खिलाफ हिरासत में लेना या रोकना, या किसी अन्य व्यक्ति को कुछ भौतिक सीमाओं के भीतर रखने के लिए दूसरे पर नियंत्रण का प्रयोग करना या क्षमता या आवाजाही की स्वतंत्रता का प्रतिबंध शामिल है।"

9.9. ब्लैक लॉ डिक्शनरी (5th Edn) में "हिरासत" से इस तरह निपटा गया है। 2009):

“अभिरक्षा-किसी वस्तु या व्यक्ति की देखभाल और नियंत्रण। किसी वस्तु की रख-रखाव, रख-रखाव, देखभाल, निगरानी, निरीक्षण, संरक्षण या सुरक्षा, इसके साथ इस विचार को ले जाना कि वह वस्तु उस व्यक्ति की तत्काल व्यक्तिगत देखभाल और नियंत्रण के भीतर है जिसकी अभिरक्षा के अधीन है। तत्काल प्रभार और नियंत्रण, न कि वित्तीय, स्वामित्व का पूर्ण नियंत्रण, हिरासत में चीज की सुरक्षा और संरक्षण के लिए जिम्मेदारी का संकेत देता है। वैध प्रक्रिया या अधिकार के आधार पर किसी व्यक्ति के व्यक्ति का बंदी भी।

यह शब्द बहुत लोचदार है और इसका अर्थ हो सकता है वास्तविक कारावास या शारीरिक निरोध या केवल शक्ति, कानूनी या शारीरिक, कैद करने या हाथ से कब्जा करने की। कानून के भीतर उस याचिकाकर्ता को संघीय बंदी प्रत्यक्षीकरण राहत का हकदार होने के लिए 'हिरासत में' होने की आवश्यकता का मतलब जेल या जेल में वास्तविक शारीरिक हिरासत नहीं है, बल्कि यह स्वतंत्रता के प्रतिबंध का पर्याय है। यू. एस. पूर्व रिले विट्ज बनाम शीहान, 319 एफ सप, पी. 147 (डी. सी. विस 1970)। तदनुसार, परिवीक्षाधीन या स्वयं की पहचान पर रिहा किए गए व्यक्तियों को बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही के उद्देश्यों के लिए 'हिरासत में' रखा गया है।”

895

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 896

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह न्यायालय जमानत आवेदन से संबंधित था और इसलिए न्यायिक हिरासत और पुलिस हिरासत के बीच अंतर करने का कोई अवसर नहीं था।

59. हम आगे ध्यान देते हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उप-धारा (2) में जानबूझकर "पुलिस अभिरक्षा" शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है। हिरासत की मंजूरी महत्वपूर्ण है जिसका निर्णय मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाना है। तथ्य यह है कि परंतुतु में पुलिस हिरासत के बारे में उल्लेख किया गया है, इसका मतलब केवल एक जांच एजेंसी की बाहरी सीमा हो सकती है।

60. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि एक अलग व्याख्या दी गई है कि एक जांच एजेंसी द्वारा मांगे जा सकने वाले कुल 15 दिनों का अर्थ और गणना कैसे की जानी चाहिए। हम इस पहलू पर पहले ही विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। यह मानते हुए भी कि इस तरह की हिरासत केवल पहले 15 दिनों के भीतर एक एजेंसी द्वारा मांगी जा सकती है, दिनों को गिनने के लिए एक भौतिक हिरासत होनी चाहिए। ऐसे मामले में जहां हिरासत को अदालत के आदेश से न्यायिक से जांच एजेंसी में स्थानांतरित किया जाता है, प्रारंभिक बिंदु वास्तविक हिरासत से होगा। हम केवल यह दोहराते हैं कि जिस क्षण किसी व्यक्ति को अदालत के समक्ष पेश किया जाता है, वह अपनी एजेंसी को अलग करते हुए हिरासत ग्रहण कर लेता है। जब पुलिस अभिरक्षा देने का आदेश पारित किया जाता है, तो किसी भी बाहरी परिस्थिति या अदालत के आदेश से हिरासत की अवधि शुरू नहीं होगी। ऐसे मामले में स्थिति अलग हो सकती है जहां बाहरी कारकों के कारण आगे हिरासत संभव नहीं है। इसके अलावा, न्यायालय का आदेश कभी भी किसी जांच को रोकने का कारक नहीं हो सकता है जब उक्त आदेश इस तरह की अभिरक्षा को बरकरार रखते हुए अंतिम आदेश के साथ मिल जाता है। ऐसे मामले में, एक्टस क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट का सिद्धांत निश्चित रूप से लागू होगा, क्योंकि अदालत की कार्यवाही कभी भी किसी पर पूर्वाग्रह नहीं डाल सकती है, विशेष रूप से, एक जांच एजेंसी जो अपने वैधानिक जनादेश का प्रदर्शन कर रही है। भारत दामोदर काले बनाम राज्य

ए. पी. (2003) 8 एस. सी. सी. 559:

“10. इस मामले के तथ्यों और हमारे समक्ष प्रस्तुत तर्कों के आधार पर, हम इस प्रश्न का निर्णय करना उचित समझते हैं कि क्या संहिता के अध्याय XXXVI के प्रावधान अभियोजन की स्थापना में देरी या संज्ञान लेने में देरी पर लागू होते हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपीलार्थियों के विद्वत वकील के अनुसार, उपरोक्त अध्याय के तहत निर्धारित सीमा संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान लेने पर लागू होती है, इसलिए भले ही शिकायत के मामले के उक्त अध्याय में उल्लिखित सीमा की अवधि के भीतर की गई हो।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

संहिता, यदि संज्ञान सीमा की अवधि के भीतर नहीं लिया जाता है तो वह सीमा द्वारा वर्जित हो जाता है। यह तर्क संहिता के अध्याय XXXVI के अध्याय शीर्षक से प्रेरित प्रतीत होता है जो इस प्रकार है: “कुछ विशिष्टताओं का संज्ञान लेने की सीमा”।

यह मुख्य रूप से अध्याय के शीर्षक की उपरोक्त भाषा पर आधारित है, यह तर्क अपीलार्थियों की ओर से संबोधित किया जाता है कि उक्त अध्याय द्वारा निर्धारित सीमा संज्ञान लेने पर लागू होती है न कि शिकायत या अभियोजन की शुरुआत पर। हम इस तरह के तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि उक्त अध्याय के विभिन्न प्रावधानों का संचयी अध्ययन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि उसमें निर्धारित सीमा केवल शिकायत या अभियोजन की शुरुआत के लिए है न कि संज्ञान लेने के लिए। यह निश्चित रूप से न्यायालय को उस स्थिति का संज्ञान लेने से रोकता है जहां उक्त अध्याय में उल्लिखित अवधि की समाप्ति के बाद न्यायालय के समक्ष शिकायत की जाती है। यह उक्त अध्याय में पाई जाने वाली संहिता की धारा 469 से स्पष्ट है जो विनिर्दिष्ट रूप से कहता है कि प्रतिबंध के संबंध में सीमा की अवधि या तो प्रतिबंध की तारीख से या प्रतिबंध का पता चलने की तारीख से शुरू होगी। धारा 470 इंगित करती है कि सीमा की अवधि की गणना करते समय, उस समय को बाहर रखा जाना चाहिए जिसके दौरान मामले पर किसी अन्य अदालत में या अपील में या बंद करने वाले के खिलाफ पुनरीक्षण में लगन से मुकदमा चलाया जा रहा था। उक्त खंड में स्पष्टीकरण में यह भी प्रावधान किया गया है कि सरकार या किसी अन्य प्राधिकरण की सहमति या मंजूरी प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय की गणना में बाहर रखा जाना चाहिए। इसी तरह, जिस अवधि के दौरान अदालत बंद थी, उसे भी बाहर करना होगा। इन सभी प्रावधानों से संकेत मिलता है कि न्यायालय संज्ञान लेते हुए निर्धारित सीमा की अवधि के भीतर और यदि आवश्यक हो तो ऐसे समय को हटाने के बाद, जो कानूनी रूप से बहिष्कृत है, उस शिकायत का संज्ञान ले सकता है। यह हमारी राय में स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि निर्धारित सीमा सीमा की अवधि के भीतर संज्ञान लेने के लिए नहीं है, बल्कि उस संबंध में संज्ञान लेने के लिए है जिसके संबंध में शिकायत की जाती है या संहिता के तहत निर्धारित सीमा की अवधि से परे अभियोजन शुरू किया जाता है। वैधानिक के अलावा

हमारे इस दृष्टिकोण का संकेत देते हुए, हम इस दृष्टिकोण का इस तथ्य से समर्थन करते हैं कि संज्ञान लेना अदालत का एक ऐसा कार्य है जिस पर अभियोजन एजेंसी या शिकायतकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं है।

897

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 898 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

इसलिए, संहिता के तहत सीमा की अवधि के भीतर की गई शिकायत को अदालत के किसी अधिनियम द्वारा निष्फल नहीं बनाया जा सकता है। कानूनी वाक्यांश "एक्ट्स क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट" जिसका अर्थ है कि अदालत का कोई कार्य किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा, या अदालत की ओर से देरी से किसी भी पक्ष को पर्याप्त नहीं होना चाहिए, यह भी इस विचार का समर्थन करता है कि विधायिका का इरादा शिकायतकर्ता के मामले को विफल करने के लिए अदालत के अधिनियम का संज्ञान लेने की अवधि को सीमित करने का नहीं हो सकता था। हमारा यह दृष्टिकोण रश्मि कुमार [(1997) 2 एस. सी. सी. 397 के मामले में इस न्यायालय के पहले के फैसले के अनुरूप भी है: 1997 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 415]"

(जोर दिया गया)

61. इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल (2020) 8

एस. सी. सी. 129, संविधान पीठ ने एक्ट्स क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट और बहाली को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को पूरी तरह से निर्धारित किया है:

"320. मैक्सिम एक्ट्स क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट अदालती कार्यवाही या अदालत के कृत्यों के कारण इस सिद्धांत पर आधारित है, किसी भी पक्ष को पर्याप्त नहीं होना चाहिए। यदि मुकदमेबाजी के लंबित रहने के दौरान कोई अंतरिम आदेश दिए जाते हैं, तो वे मामले में अंतिम निर्णय के अधीन होते हैं। यदि मामला बिना योग्यता के खारिज कर दिया जाता है, तो अंतरिम आदेश स्वचालित रूप से भंग हो जाता है। यदि मामले का नेतृत्व बिना किसी योग्यता के किया गया है, तो उक्ति कमोडम एक्स इंजुरिया सुआ नेमो हेबरे डेबेट को आकर्षित करती है, यानी किसी पक्ष को अपनी गलती से सुविधा नहीं मिल सकती है। किसी भी व्यक्ति को अपनी गलती का फायदा नहीं उठाना चाहिए। यदि मुकदमेबाजी को तुच्छ रूप से या बिना किसी आधार के, विलंब करने के लिए अन्यायपूर्ण रूप से चलाया गया है और इससे इसमें देरी होती है, तो ऐसे व्यक्ति के पक्ष में कोई समानता नहीं है। ऐसे मामलों का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना आवश्यक है। मृत्युंजय पानी बनाम नर्मदा बाला सस्मल, ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1353 में, इस न्यायालय ने कहा कि: (आकाशवाणी पृष्ठ 1355, पैरा 5)

"5. ... यही सिद्धांत लैटिन मैक्सिम कमोडम एक्स इंजुरिया सुआ नेमो हेबरे डेबेट में शामिल है, यानी किसी पक्ष को अपनी गलती से सुविधा नहीं मिल सकती है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी को भी अपने गलत कार्य से लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।"

×××

×××

×××

324. महादेव सावलाराम शेल्के बनाम पुणे नगर निगम, (1995)

3 एस. सी. सी. 33, यह देखा गया है कि न्यायालय अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के तहत न्यायालय के अधिनियम द्वारा प्रतिवादियों द्वारा किए गए नुकसान को कम करने का कर्तव्य निभा सकता है। अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग पर रोक लगाने के लिए इस तरह की कार्रवाई आवश्यक है। अमरजीत सिंह बनाम देवी रतन, (2010) 1 एस. सी. सी. 417:(2010) 1 एससीसी (एल एंड एस) 1108,

और राम कृष्ण वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1992) 2 एस. सी. सी. 620

यह मत व्यक्त किया गया कि कोई भी व्यक्ति अदालत के कार्य से पर्याप्त नहीं हो सकता है और अंतरिम आदेश के अनुचित लाभ को बेअसर किया जाना चाहिए। अमरजीत सिंह बनाम देवी रतन, (2010) 1 एस. सी. सी. 417:(2010) 1 एस. सी. सी. (एल. एंड. एस.) 1108, इस न्यायालय ने कहा: (एस. सी. सी. पीपी. 422-23, पैरा 17-18)

“17. कोई भी वादी कानून की अदालत में केवल मामले के लंबित होने से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि अंतरिम आदेश हमेशा मामले में पारित किए जाने वाले अंतिम आदेश में मिल जाता है, और यदि रिट याचिका अंततः खारिज हो जाती है, तो अंतरिम आदेश स्वचालित रूप से रद्द हो जाता है। किसी पक्ष को अंतरिम आदेश प्राप्त करके और उसके बाद अदालत को दोष देकर अपनी गलतियों का कोई लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। तथ्य यह है कि रिट अंततः किसी भी योग्यता से रहित पाई जाती है, यह दर्शाता है कि एक तुच्छ रिट याचिका दायर की गई थी। मैक्सिम एक्टस क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट, जिसका अर्थ है कि अदालत का कार्य किसी पर पूर्वाग्रह नहीं करेगा, ऐसे मामले में लागू हो जाता है। ऐसी तथ्य स्थिति में, न्यायालय के कार्य द्वारा किसी पक्ष के साथ किए गए गलत कार्य को पूर्ववत करने के लिए न्यायालय बाध्य है। इस प्रकार, न्यायालय की अधिकारिता का आह्वान करने वाले पक्ष द्वारा प्राप्त किसी भी अनुचित या अनुचित लाभ को बेअसर किया जाना चाहिए, क्योंकि मुकदमेबाजी की संस्था को अदालत के अधिनियम द्वारा विलंबित कार्रवाई से किसी भी पक्षकार को कोई लाभ प्रदान करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (शिव शंकर बनाम यू. पी. एस. आर. टी. सी., 1995 सप्लीमेंट (2) एस. सी. सी. 726:1995 एससीसी (एल एंड एस) 1018,

जीटीसी इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1998) 3 एस. सी. सी. 376 और जयपुर नगर निगम बनाम सी. एल. मिश्रा, (2005) 8 एस. सी. सी. 423)। 18. राम कृष्ण वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1992) 2 एस. सी. सी. 620]

इस न्यायालय ने इस पर भरोसा करते हुए इसी तरह के मुद्दे की जांच की

ग्रिडलेज बैंक लिमिटेड बनाम में इसका पूर्व निर्णय। सी. आई. टी. (1980) 2 एस. सी. सी.

191 :1980 एस. सी. सी. (कर) 230 और यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भी व्यक्ति न्यायालय के अधिनियम से पर्याप्त नहीं हो सकता है और यदि अंतरिम आदेश 899 दिया गया है।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 900

पारित किया जाता है, और याचिकाकर्ता इसका लाभ उठाता है, और अंततः याचिका को बिना किसी योग्यता के पाया जाता है और खारिज कर दिया जाता है, न्याय के हित के लिए आवश्यक है कि अदालत के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने वाले पक्ष द्वारा प्राप्त किसी भी अनुचित या अनुचित लाभ को बेअसर किया जाना चाहिए।”

325. कर्नाटक में दुर्लभ पृथ्वी बनाम विभाग। खान और भूविज्ञान विभाग, (2004)

2 एस. सी. सी. 783, इस न्यायालय ने कहा कि मैक्सिम एक्टस क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट की आवश्यकता है कि पक्ष को उसी स्थिति में रखा जाना चाहिए, लेकिन अदालत के आदेश के लिए जो अंततः टिकाऊ नहीं पाया गया है, जिसके परिणामस्वरूप

एक पक्ष को लाभ हो रहा है जो अन्यथा अर्जित नहीं होता और दूसरे पक्ष ने अदालत के आदेशों के लिए पर्याप्त किया है। सफल पक्ष दूसरे पक्ष द्वारा अर्जित लाभ के वितरण की मांग कर सकता है, या जो उसने खो दिया है उसकी भरपाई कर सकता है। इस न्यायालय ने टिप्पणी की: (एस. सी. सी. पी.पी. 790-91, पैरा 10-11)

“10. एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवबिट और आयोजित के सिद्धांत में

कि इस सिद्धांत को केवल न्यायालय के ऐसे कृत्यों पर लागू करने में विश्वास नहीं किया गया था जो गलत थे; यह सिद्धांत ऐसे सभी कृत्यों पर लागू होता है जिन पर यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि यदि न्यायालय को तथ्यों और कानून के बारे में सही ढंग से अवगत कराया जाता तो वह इस तरह से कार्य नहीं करता। यह पुनर्स्थापन का सिद्धांत है जो आकर्षित होता है। कब चालू होता है

पक्षकारक कोनो अधिनियमक लेखा, जे न्यायालयकें आदेश पारित करबाक लेल राजी करैत छैक, जकरा अन्तमे टिकाऊ नहि मानल जाइत छैक, एकर परिणामस्वरूप एक पक्षकें लाभ प्राप्त होइत छैक जे ओ अन्यथा अर्जित नहि करैत छल, अथवा दोसर पक्षकें एकटा एहन निर्धनता प्राप्त भऽ गेल छैक जे ओ पर्याप्त नहि होइत, मुदा न्यायालयक आदेश आ एहन पक्षकारक कार्यक लेल, तखन सफल पक्षकें कानूनी रूपसँ मोकदमाक अन्तमे धनक दृष्टिसँ आकलन योग्य राहतक हकदार ठहराओल जाइत छैक, ओहि तरहँ क्षतिपूर्ति करबाक हकदार होइत छैक जाहिमे पक्षकारसभकें क्षतिपूर्ति देल जाइत छैक यदि न्यायालयक अंतरिम आदेश पारित नहि भेल रहैत। सफल पार्टी मांग कर सकती है: (क) न्यायालय के अंतरिम आदेश के तहत विरोधी पक्ष द्वारा अर्जित लाभ का वितरण, या (ख) जो उसने खो दिया है उसकी प्रतिपूर्ति करना।

11. इस मामले के तथ्यों में, फैसले के बावजूद कर्नाटक

दुर्लभ पृथ्वी बनाम खान और भूविज्ञान विभाग, डब्ल्यू. पी. सं.

4030-4031 1997 का आदेश, उच्च न्यायालय का दिनांक 1-12-1998 (KAR)

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

न्यायालय, यदि अपीलार्थी इस न्यायालय को अंतरिम आदेश पारित करने के लिए राजी नहीं करते, तो वे खनन पट्टों को संचालित करने और निकाले गए खनिजों को बढ़ाने, हटाने और निपटाने के हकदार नहीं होते। लेकिन इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के लिए, अपीलकर्ताओं और किसी भी व्यक्ति के बीच कोई अंतर नहीं है, बिना किसी वैध प्राधिकरण के, किसी भी भूमि से कोई खनिज उगाना, जो धारा 21 की उप-धारा (5) की प्रयोज्यता को आकर्षित करता है। चूंकि अपीलार्थी न्यायालय से हार गए हैं, इसलिए उन्हें उनके द्वारा अर्जित लाभ को बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

न्यायालय के अंतरिम आदेश। उच्च न्यायालय ने ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थियों को उसी स्थिति में रखा जाना चाहिए था जिसमें वे होते यदि इस न्यायालय ने उनकी रक्षा नहीं की होती।

उन्हें अंतरिम आदेश जारी करके। राज्य सरकार अपीलार्थियों से केवल लघु खनिजों की कीमत की मांग कर रही है। राज्य सरकार द्वारा किराया, रॉयल्टी या कर पहले ही वसूल किया जा चुका है और इसलिए, उस शीर्ष के तहत कोई मांग नहीं है। अपीलार्थियों के खिलाफ कोई दंडात्मक कार्यवाही, किसी भी आपराधिक कार्यवाही से बहुत कम, शुरू नहीं की गई है। यह तर्क देना बिल्कुल गलत है कि अपीलकर्ताओं को कोई जुर्माना देने के लिए कहा जा रहा है या किसी दंडात्मक कार्रवाई के अधीन किया जा रहा है। यह अपीलार्थियों का मामला नहीं है कि उन्हें निर्यात से प्राप्त मूल्य से अधिक मूल्य का भुगतान करने के लिए कहा जा रहा है या यह कि प्रतिवादी राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य किसी भी तरह से मनमाना या अनुचित है।”

(जोर दिया गया) 326। ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक, (1988) 2 एस. सी. सी. 602:1988 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 372, इस न्यायालय ने कहा कि यह एक स्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय का कोई कार्य किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा। यह सिद्धांत न्याय और सद्बुद्धि पर आधारित है और कानून के प्रशासन के लिए एक सुरक्षित और निश्चित मार्गदर्शन प्रदान करता है। किसी भी व्यक्ति को उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। भारत में, प्रक्रियात्मक झगड़ों के कारण देरी होती है। ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक, (1988) 2 एस. सी. सी. 602:1988 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 372, इस न्यायालय ने कहा: (एस. सी. सी. पी. 687, पैरा 102)

“102. यह शीर्ष अदालत होने के नाते, किसी भी वादी के पास अपने फैसलों पर सवाल उठाने के लिए किसी भी उच्च मंच से संपर्क करने का कोई अवसर नहीं है। प्रभु 901

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 902

मॉन्ट्रियल स्ट्रीट रेलवे कंपनी में बकमास्टर बनाम नॉर्मंडिन, 1917

एसी 170 (पीसी) (एसआईसी) ने कहा: ‘न्यायालय के सभी नियम और कुछ नहीं बल्कि न्याय के उचित प्रशासन को सुरक्षित करने के उद्देश्य से प्रावधान हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें सेवा करने के लिए बनाया जाए और उस उद्देश्य के अधीन किया जाए।’

यह न्यायालय गुजरात राज्य बनाम रामप्रकाश पी. पुरी, (1969) 3 एस. सी. सी.

156 : 1970 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 29 ने यह कहते हुए स्थिति को दोहराया: (एस. सी. सी. पी. 159, पैरा 5)

‘5.... प्रक्रिया को एक नौकरानी के रूप में वर्णित किया गया है न कि कानून की मालकिन के रूप में, जिसका उद्देश्य न्याय के कारण को कम करना और सुविधा प्रदान करना है न कि इसे नियंत्रित करना या बाधित करना है। प्रक्रिया के सभी नियमों की तरह, यह नियम एक ऐसे निर्माण की मांग करता है जो इस उद्देश्य को बढ़ावा दे।’

एक बार जब न्यायिक संतुष्टि हो जाती है कि निर्देश देने के लिए खुला नहीं था और इसे अदालत की गलती के रूप में स्वीकार किया जाता है, तो यह न केवल उचित है, बल्कि अदालत का कर्तव्य भी है कि वह अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करके गलती को सुधारें। न्यायिक राय इस दृष्टिकोण के पक्ष में बहुत अधिक झुकती है कि अदालत की गलती को बिना किसी बाधा के अदालत द्वारा ही ठीक किया जा सकता है। यह सिद्धांत रूप में है, जैसा कि सिकंदर में बताया गया है।

रॉजर बनाम कम्पोटायर डी 'एस्कॉम्प्टे डी पेरिस, (1969-71) LR 3 PC 465:

17 ईआर 120। मेरा विचार है कि वर्तमान स्थिति में, अदालत की अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग गलती को सुधारने के लिए किया जा सकता है। महाजन, जे. केसरदेव चामरिया बनाम राधा किसेन चामरिया, (1952) 2 एस. सी. सी. 329 में चार-न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोल रहे हैं: 1953 एससीआर 136: ए. आई. आर 1953 एस. सी. 23, एस. सी. आर. पी. 153 कहा गया: (ए. आई. आर. पी. 28, पैरा 21)

‘21.... न्यायाधीश के पास डिक्री धारक द्वारा लिए गए आधारों या निर्णय-देनदारों द्वारा उठाई गई आपत्तियों पर चर्चा किए बिना अपनी गलती को सुधारने का अधिकार क्षेत्र था।’ “ × × ×

× × ×

× × ×

पुनः में -पुनर्स्थापन का सिद्धांत

335. क्षतिपूर्ति का सिद्धांत मुकदमेबाजी के अंत में पूर्ण न्याय करने के आदर्श पर आधारित है, और पक्षों को होना चाहिए

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

एक ही स्थिति में रखा गया लेकिन मुकदमेबाजी और अंतरिम आदेश के लिए,

यदि कोई हो, तो मामले में पारित किया गया। दक्षिण पूर्वी कोल एल्ड्स लिमिटेड बनाम

एम. पी. राज्य, (2003) 8 एस. सी. सी. 648 में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कोई भी पक्ष मुकदमे का लाभ नहीं उठा सकता है। इसे एल. आई. एस. खोजने की स्थिति में देरी के कारण प्राप्त लाभ को कम करना पड़ता है। अदालत द्वारा पारित अंतरिम आदेश एक अंतिम निर्णय में विलय हो जाता है। एक पक्ष के पक्ष में पारित एक अंतरिम आदेश की वैधता, अंतरिम

स्तर पर सफल पक्ष के खिलाफ एक वित्तीय आदेश की स्थिति में उलट हो जाती है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 144 क्षतिपूर्ति का स्रोत नहीं है। बल्कि यह न्याय, समानता और निष्पक्षता के शासन की वैधानिक मान्यता है। अदालत के पास पुनर्स्थापन का आदेश देने का अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र है ताकि पूर्ण न्याय किया जा सके। यह इस सिद्धांत पर भी है कि एक गलत व्यवस्था को जीवित रखने और उसका सम्मान करने से उसे कायम नहीं रखा जाना चाहिए। इस तरह की शक्ति का प्रयोग करते हुए, अदालतों ने धारा 144 सी. पी. सी. की शर्तों के भीतर नहीं आने वाली असंख्य स्थितियों में बहाली के सिद्धांत को लागू किया है। प्रतिपूर्ति की प्रयोज्यता को आकर्षित करने वाली बात यह नहीं है कि अदालत का कार्य गलत या गलती या अदालत द्वारा की गई त्रुटि है; परीक्षण यह है कि क्या, पक्ष के किसी कार्य के कारण अदालत को अंत में एक आदेश पारित करने के लिए राजी करना टिकाऊ नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप एक पक्ष को एक लाभ प्राप्त हो रहा है जो उसने अन्यथा अर्जित नहीं किया होता, या दूसरे पक्ष को एक निर्धनता प्राप्त करने के लिए, प्रतिपूर्ति करनी होती है। मुकदमेबाजी को एक उत्पादक उद्योग होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। मुकदमेबाजी को खेल तक सीमित नहीं किया जा सकता है जहां हर मामले में अवसर का एक तत्व होता है। यदि प्रतिपूर्ति की अवधारणा को अंतरिम आदेशों के आवेदन से बाहर रखा जाता है, तो वादी को अंतरिम आदेश से प्राप्त लाभ को निगलने से लाभ होगा। इस न्यायालय ने दक्षिण पूर्वी कोल एल्ड्स लिमिटेड बनाम एम. पी. राज्य, (2003) 8 एस. सी. सी. 648 इस प्रकार: (एस. सी. सी. पीपी. 662-64, पैरा 26-28)

“26. हमारी राय में, पुनर्स्थापन का सिद्धांत इस समर्पण का ध्यान रखता है। अपने व्युत्पत्तिगत अर्थ में “पुनर्स्थापना” शब्द का अर्थ है किसी पक्ष को किसी डिक्री या आदेश के संशोधन, परिवर्तन या उलटने पर बहाल करना, जो अदालत के डिक्री या आदेश के निष्पादन में या प्रत्यक्ष परिणाम में उसके लिए खो गया है।

किसी डिक्री या आदेश का (जफर खान बनाम राजस्व बोर्ड, यू. पी. देखें)

1984 एस. सी. सी. 505)। कानून में, “पुनर्स्थापना” शब्द का उपयोग 903 में किया जाता है।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 904

तीन इंद्रियां: (i) किसी विशेष वस्तु को उसके सही मालिक या स्थिति को वापस करना या पुनर्स्थापित करना; (ii) दूसरे के साथ किए गए गलत कार्य से प्राप्त लाभ के लिए मुआवजा; और (iii) दूसरे को हुए नुकसान के लिए मुआवजा या क्षतिपूर्ति। (काले का नियम देखें)

शब्दकोश, 7 वीं संस्करण, पृ. 1315)। जॉन डी. द्वारा अनुबंध का कानून।

कैलामारी और जोसेफ एम. पेरिलो को ब्लैक द्वारा यह कहने के लिए उद्धृत किया गया है कि “पुनर्स्थापना” एक अस्पष्ट शब्द है, जो कभी-कभी किसी ऐसी चीज के विच्छेदन का उल्लेख करता है जो ली गई है और कभी-कभी की गई चोट के मुआवजे का उल्लेख करता है:

‘अक्सर, शब्द के किसी भी अर्थ के तहत परिणाम समान होगा।... अन्यायपूर्ण निर्धनता, साथ ही अन्यायपूर्ण संवर्धन, पुनर्स्थापन के लिए एक आधार है। यदि प्रतिवादी एक गैर-हानिकारक गलत निरूपण का दोषी है, तो वसूली का उपाय कठोर नहीं है, लेकिन पुनर्स्थापन के अन्य मामलों की तरह, सापेक्ष दोष, सहमत जोखिम, और वैकल्पिक जोखिम आवंटन की निष्पक्षता जैसे कारकों पर सहमति नहीं है और किसी भी पक्ष की गलती के लिए जिम्मेदार नहीं है।’

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 144 में बहाली के सिद्धांत को वैधानिक रूप से मान्यता दी गई है। सी. पी. सी. की धारा 144 न केवल एक डिक्री को अलग करने, उलटने, अलग करने या संशोधित करने की बात करती है, बल्कि इसमें एक डिक्री के बराबर एक आदेश भी शामिल है। प्रावधान का दायरा इतना व्यापक है कि इसमें लगभग सभी प्रकार के परिवर्तन, उलट, अलग रखने या किसी डिक्री या आदेश में संशोधन को शामिल किया जा सकता है। अदालत द्वारा पारित अंतरिम आदेश एक अंतिम निर्णय में विलय हो जाता है। किसी पक्ष के पक्ष में पारित अंतरिम आदेश की वैधता, अंतरिम स्तर पर पार्टियों के खिलाफ सफल होने वाले अंतिम निर्णय की स्थिति में उलट हो जाती है।...

27. ... यह इस सिद्धांत पर भी है कि एक गलत व्यवस्था को जीवित रखने और उसका सम्मान करने से उसे कायम नहीं रखा जाना चाहिए (ए. अरुणगिरी नादर बनाम एस. पी. रथिनसामी, 1970 एस. सी. सी. ऑनलाइन मैड 63)। इस तरह की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए, अदालतों ने धारा 144 की शर्तों के भीतर नहीं आने वाली असंख्य स्थितियों में बहाली के सिद्धांतों को लागू किया है।

[2023] 12 एस सी आर।

28. यह कि न्यायालय के किसी कार्य द्वारा कोई भी व्यक्ति पर्याप्त नहीं होगा, न्यायालय के किसी त्रुटिपूर्ण कार्य के लिए एक नियम नहीं है; "न्यायालय का कार्य" अपने व्यापक दायरे में ऐसे सभी कार्यों को शामिल करता है जिनके बारे में न्यायालय किसी भी कानूनी कार्यवाही में राय बना सकता है कि यदि न्यायालय को तथ्यों और कानून के बारे में सही ढंग से अवगत कराया जाता तो उसने इस तरह से कार्य नहीं किया होता।... पुनर्स्थापन की अवधारणा को बाहर रखा गया है

अंतरिम आदेशों के लिए आवेदन, तब वादी को अंतरिम आदेश से प्राप्त लाभ को निगलने से लाभ होगा

भले ही लड़ाई अंत में हार गई हो। इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हमारी राय है कि मुकदमा के अंत में धन के संदर्भ में आकलन योग्य राहत का हकदार होने वाला सफल पक्ष उस अवधि के लिए उपयुक्त उचित दर पर ब्याज के पुरस्कार द्वारा क्षतिपूर्ति का हकदार है, जिसके लिए धन जारी करने पर रोक लगाने का अदालत का अंतरिम आदेश लागू रहा था।"

(जोर दिया गया) 62। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के प्रावधान (ए) के तहत, एक मजिस्ट्रेट पुलिस की हिरासत के अलावा 15 दिनों की अवधि से अधिक हिरासत को अधिकृत कर सकता है। 15 दिनों की इस अवधि को या तो पुलिस हिरासत में या जांच अधिकारी के पक्ष में हिरासत में लिया जाना चाहिए, जो जांच की पूरी अवधि में फैली हुई है।

63. यह बहुत अच्छी तरह से तय किया गया है कि एक परंतुक को मुख्य प्रावधान में उपयोग की गई भाषा से समझना होगा न कि इसके विपरीत। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के प्रावधान में किसी अभियुक्त व्यक्ति को 15 दिनों की अवधि से आगे पुलिस हिरासत में रखने के अधिकार की बात की गई है, बशर्ते वह संतुष्ट हो। यह आगे कहता है कि किसी भी मामले में हिरासत की कुल अवधि, या तो पुलिस या न्यायिक, 60 या 90 दिनों से अधिक नहीं होगी, जैसा भी मामला हो। इस परंतुक को समझने के लिए मुख्य प्रावधान पर वापस जाना होगा, विशेष रूप से "समय-समय पर, अधिकृत करें" शब्दों पर।

अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में निरोध जो ऐसा मजिस्ट्रेट "कुल मिलाकर 15 दिनों से अधिक की अवधि के लिए" समझता है। व्याख्या

हमारे द्वारा मुख्य प्रावधान को दिए जाने से परंतुक को पर्याप्त स्पष्टता मिलेगी। इसलिए, 15 दिनों की अवधि अधिकतम अवधि है जो पुलिस के पक्ष में दी जा सकती है और समय-समय पर कुल 60 या 90 दिनों की अवधि होगी। कोई अन्य व्याख्या 905 होगी।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 906

जाँच की शक्ति को गंभीर रूप से बाधित करता है। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि परंतुक केवल 15 दिनों की अधिकतम अवधि को दोहराता है, जो पुलिस के पक्ष में हिरासत है, जबकि पुलिस हिरासत के लिए अकेले पहले 15 दिनों का कोई उल्लेख नहीं है।

64. हम केवल यह दोहराएंगे कि परंतुक व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पर्याप्त जांच के बीच एक वास्तविक संतुलन बनाता है। समय सीमा एक अभियुक्त व्यक्ति को कारावास से बाहर आने में मदद करेगी और उसके बाद मुकदमे के तेजी से समापन की ओर ले जाएगी, यह पुलिस हिरासत के माध्यम से एक उचित जांच की सुविधा भी प्रदान करती है।

65. यह जाँच की अवधि को सीमित करके एक अभियुक्त व्यक्ति के हितों की रक्षा करने के लिए है, जिसकी विफलता एक गिरफ्तार व्यक्ति को रिहा करने का हकदार बनाएगी। यह फिर से संविधान के अनुच्छेद 21 का एक और पहलू है।

भारत, 1950। सतेंद्र कुमार अंतिल (ऊपर): "39. धारा 167 (2) वर्ष 1978 में शुरू की गई थी, जिसमें जांच को पूरा करने के लिए अधिकतम समय पर जोर दिया गया था। इस प्रावधान के पीछे एक प्रशंसनीय उद्देश्य है, जो एक त्वरित जांच और एक निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना और समाज के गरीब वर्गों के हितों की रक्षा करने वाली एक तर्कसंगत प्रक्रिया निर्धारित करना है। यह भी अनुच्छेद 21 का एक अन्य अंग/भाग है। बेगुनाही का अनुमान भी इस प्रावधान में अंतर्निहित है। एक जाँच एजेंसी को जाँच की प्रक्रिया में तेजी लानी होती है क्योंकि एक संदिग्ध जेल में है। इस प्रकार, निर्धारित समय के भीतर अन्वेषण पूर्ण करने का कार्य एजेंसी को दिया गया है और जिसके पूर्ण ना होने पर आरोपी को रिहा किया जा सकेगा। निहित अधिकार एक पूर्ण और अक्षम्य है, जो संदिग्ध के लाभ के लिए है।

40. इस तरह के अधिकार को किसी भी अप्रत्याशित परिस्थितियों के दौरान भी नहीं लिया जा सकता है, जैसे कि हाल ही में आई महामारी, जैसा कि इस न्यायालय ने कहा था।

एम. रवींद्रन बनाम राजस्व खुफिया निदेशालय, (2021) 2 एससीसी

485 : (2021) 1 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 876: (एस. सी. सी. पीपी. 502-06, पैरा 17)

“II. धारा 167 (2) और जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार

17. इससे पहले कि हम धारा 167 (2) के तहत डिफॉल्ट जमानत के अधिकार के मापदंडों पर विस्तार करें, जैसा कि विभिन्न निर्णयों द्वारा व्याख्या की गई है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

हम इस न्यायालय की टिप्पणियों पर ध्यान देना उचित समझते हैं।

उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में इस न्यायालय द्वारा,

(2001) 5 एससीसी 453:2001 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 760 व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार और उससे वंचित होने के प्रभाव पर निम्नानुसार है: (एस. सी. सी. पी. 472, पैरा 13)

‘13. ... व्यक्तिगत स्वतंत्रता भारतीय संविधान के पोषित उद्देश्यों में से एक है और इसे वंचित करना केवल कानून के अनुसार और संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निर्धारित प्रावधानों के अनुरूप ही हो सकता है। जब कानून यह प्रावधान करता है कि मजिस्ट्रेट धारा 167 की उप-धारा (2) के परंतुक में दर्शाई गई अधिकतम अवधि तक आरोपी को हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है, तो जांच एजेंसी द्वारा चालान की अवधि के बिना कोई और हिरासत एक छल होगा और कानून के अनुसार और दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप नहीं होगा, और इस तरह, संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन हो सकता है।’

17.1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि 'नहीं'

कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाएगा। यह तय किया गया है

इस न्यायालय की संविधान पीठ ने मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एस. सी. सी. 248 में कहा कि ऐसी प्रक्रिया मनमाना, अनुचित या अनुचित नहीं हो सकती है। सी. आर. पी. सी. की धारा 167 (2) के अधिनियमन का इतिहास और उसके परंतुक में निहित "डिफॉल्ट जमानत" की सुरक्षा आंतरिक रूप से अनुच्छेद 21 से जुड़ी हुई है और यह संवैधानिक सुरक्षा की एक विधायी व्याख्या के अलावा और कुछ नहीं है कि किसी भी व्यक्ति को कानून के शासन के अनुसार हिरासत में नहीं लिया जाएगा। 17.2. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 ("1898 संहिता") की धारा 167 के तहत, जो दंड प्रक्रिया संहिता के अधिनियमन से पहले लागू थी, अधिकतम अवधि जिसके लिए किसी आरोपी को पुलिस या न्यायिक हिरासत में भेजा जा सकता था, 15 दिनों की थी। हालांकि, चूंकि 15 दिनों के भीतर जटिल जांच को समाप्त करना अक्सर अव्यवहारिक था, इसलिए एक प्रथा पैदा हुई जिसमें अधिकारियों की जांच रिमांड अवधि की समाप्ति के बाद "प्रारंभिक आरोप पत्र" दायर की जाती थी। राज्य तब मजिस्ट्रेट से 907 पर अनुरोध करेगा।

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 908

मुकदमे की शुरुआत को स्थगित करें और 1898 की संहिता की धारा 344 के तहत आरोपी की आगे की रिमांड को तब तक अधिकृत करें जब तक कि जांच पूरी नहीं हो जाती और आरोप पत्र दायर नहीं किया जाता। न्यायिक प्रशासन के सुधारों पर रिपोर्ट संख्या 14 में भारत के विधि आयोग (खंड II, 1948, pp. 758-760) ने बताया कि कई मामलों में आरोपी कई महीनों से हिरासत में थे और अदालतों के समक्ष बिना किसी वित्तीय रिपोर्ट के पेश किए जा रहे थे। यह भी बताया गया कि

न्यायिक राय में टकराव था कि क्या मजिस्ट्रेट आरोपी को रिहा करने के लिए बाध्य था यदि पुलिस रिपोर्ट 15 दिनों के भीतर नहीं दी गई थी।

17.3. इसलिए विधि आयोग ने रिपोर्ट संख्या 14 में 15 दिनों की समाप्ति के बाद निरंतर रिमांड के लिए विशिष्ट रूप से एक उचित प्रावधान की आवश्यकता की सिफारिश की, इस तरह से कि

‘गंभीर अपराध के मामलों में पूर्ण और उचित जांच की जरूरतों को पूरा करते हुए, यह व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करेगा।

“व्यक्ति का।” “इसके अलावा, विधायिका को अधिकतम समय अवधि निर्धारित करनी चाहिए जिसके बाद किसी भी आरोपी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस रिपोर्ट के बिना हिरासत में नहीं लिया जा सकता है। यह इंगित किया गया था कि इंग्लैंड में राजद्रोह जैसे गंभीर अपराधों के आरोपी व्यक्ति को भी मुकदमा शुरू होने तक अनिश्चित काल के लिए जेल में नहीं रखा जा सकता था।

17.4. रिपोर्ट संख्या 14 में दिए गए सुझाव को विधि आयोग द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (खंड 41) पर रिपोर्ट संख्या 41 में दोहराया गया था। I, 1969, pp. 76-77। विधि आयोग ने धारा 167 के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि से परे अभियुक्त को रिमांड पर लेने के लिए 1898 की संहिता की धारा 344 के दुरुपयोग से बचने की आवश्यकता पर फिर से जोर दिया। यह इंगित किया गया था कि इससे गंभीर दुरुपयोग हो सकता है जिसमें ‘

गिरफ्तार व्यक्ति को इस तरह से अनिश्चित काल के लिए हिरासत में रखा जा सकता है, जबकि जांच आराम से चल सकती है। इसलिए

आयोग ने रिमांड के लिए अधिकतम 60 दिनों की समय सीमा तय करने की सिफारिश की। आयोग ने रिपोर्ट संख्या 37 में पहले व्यक्त किए गए आरक्षण पर विचार किया कि इस तरह के विस्तार के परिणामस्वरूप 60 दिनों की अवधि नियमित हो सकती है। हालांकि, यह विश्वास व्यक्त किया गया था कि उच्च न्यायालयों द्वारा उचित पर्यवेक्षण से इसे दरकिनार करने में मदद मिलेगी।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

17.5. रिपोर्ट संख्या 41 में दिए गए सुझावों पर ध्यान दिया गया और केंद्र सरकार द्वारा 1970 में दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक का मसौदा तैयार करते समय उन्हें शामिल किया गया। अंततः 1898 की संहिता को वर्तमान सी. आर. पी. सी. द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। सी. आर. पी. सी. के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में यह प्रावधान है कि सरकार ने विधि आयोग की सिफारिशों का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित महत्वपूर्ण विचारों को ध्यान में रखा:

‘3. आयोग की सिफारिशों की सरकार द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित बुनियादी बातों को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक जांच की गई:

(i) प्राकृतिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार अभियुक्त व्यक्ति का निष्पक्ष विचारण होना चाहिए ;

((ii) जांच और मुकदमे में देरी से बचने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए जो न केवल शामिल व्यक्तियों के लिए बल्कि समाज के लिए भी हानिकारक है; और

(iii) प्रक्रिया जटिल नहीं होनी चाहिए और अधिकतम संभव सीमा तक समाज के गरीब वर्गों के लिए उचित व्यवहार सुनिश्चित किया जाना चाहिए।’

17.6. यह इस पृष्ठभूमि में था कि धारा 167 (2) को वर्तमान सी. आर. पी. सी. के भीतर अधिनियमित किया गया था, जिसमें अभियुक्त की रिमांड की अवधि पर समय-सीमा का प्रावधान किया गया था, जो किए गए अपराध की गंभीरता के अनुपात में है, जिसमें विफल रहने पर अभियुक्त जमानत का अक्षम्य अधिकार प्राप्त करता है। जैसा कि ऊपर उल्लिखित विधि आयोग की सिफारिशों से स्पष्ट है, विधायिका का इरादा अभियुक्त की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने की आवश्यकता के साथ जांच को पूरा करने के लिए पर्याप्त समय-सीमा की आवश्यकता को संतुलित करना था। धारा 167 (2) एक स्पष्ट आदेश प्रदान करती है कि जांच एजेंसी को निर्धारित समय अवधि के भीतर आवश्यक साक्ष्य एकत्र करना चाहिए, जिसमें विफल रहने पर आरोपी को अब हिरासत में नहीं लिया जा सकता है। यह सुनिश्चित करता है कि जांच अधिकारी आगे रिमांड की संभावना का दुरुपयोग किए बिना तेजी से और प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए मजबूर हैं। यह यह भी सुनिश्चित करता है कि अदालत अपराध की जानकारी

देने की तारीख से बिना किसी अनुचित देरी के मामले का संज्ञान ले, ताकि बड़े पैमाने पर समाज विश्वास न खोए और आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रति सनकी भावना विकसित न हो।

909

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. 910 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

17.7. इसलिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, धारा 167 (2) अनुच्छेद 21 के तहत संवैधानिक प्रतिबद्धता से पूरी तरह से जुड़ी हुई है जो गैरकानूनी और मनमाने ढंग से हिरासत में लिए जाने के खिलाफ जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा का वादा करती है, और इसकी व्याख्या इस तरीके से की जानी चाहिए जो इस उद्देश्य को पूरा करती है। इस संबंध में हम राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य, (2017) 15 एस. सी. सी. 67 में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का उल्लेख करना उपयोगी समझते हैं: (2018) 1 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 401, जिसमें धारा 167 (2) सी. आर. पी. सी. की व्याख्या के रूप में कुछ मौलिक सिद्धांत निर्धारित किए गए थे, हालांकि इसमें शामिल कानून के प्रश्न वर्तमान मामले से कुछ अलग थे। राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य, (2017) 15 एस. सी. सी. 67 मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष प्रश्न - (2018) 1 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 401, यह था कि क्या पहली बार, धारा 167 (2) (ए) (आई) के तहत 90 दिनों की रिमांड का विस्तार उन मामलों में लागू होगा जहां कारावास की अधिकतम अवधि 10 साल थी, हालांकि न्यूनतम अवधि 10 साल से कम थी। दूसरा, क्या अभियुक्त के नेतृत्व में जमानत के लिए आवेदन को डिफॉल्ट जमानत के लिए आवेदन के रूप में माना जा सकता है, भले ही धारा 167 (2) के तहत वैधानिक अवधि की समाप्ति को जमानत के आधार के रूप में निर्दिष्ट रूप से अनुरोध नहीं किया गया था। बहुमत की राय थी कि 90 दिनों की सीमा केवल उन मामलों के संबंध में उपलब्ध है जहां न्यूनतम दस साल की कारावास की अवधि निर्धारित की गई है, और उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त के वकील द्वारा लिखित आवेदन के बदले में डिफॉल्ट जमानत के लिए मौखिक दलीलें पर्याप्त होंगी। यह इस तर्क पर आधारित था कि अदालत को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मामलों में बहुत अधिक तकनीकी नहीं होना चाहिए। मदन बी. लोकुर, जे. ने अपनी बहुमत की राय में इस प्रकार कहा: (एस. सी. सी. पीपी. 95-96 और 99, पैरा 29, 32 और 41)

‘29. इसके बावजूद, चौबीस घंटे के भीतर और अन्यथा समयबद्ध अवधि के भीतर जांच पूरी करने का मूल विधायी इरादा अपरिवर्तित रहता है, भले ही उस अवधि को वर्षों से बढ़ा दिया गया हो। यह एक संकेत है कि जांच पूरी करने के लिए पर्याप्त समय देने के अलावा, विधायिका ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर भी और हमेशा जोर दिया है और हमेशा महसूस किया है कि किसी आरोपी का लंबे समय तक या अनिश्चित काल के लिए हिरासत में रहना अनुचित होगा। यह इस कारण से है और जांच करने के लिए भी है

अभिकरण उत्तरदायी है कि विधायिका द्वारा समय-सीमा निर्धारित की गई है।...

32. ... लंबे समय तक इस तरह के विचारों और विचारों ने एक सदी से अधिक समय तक विधायिका को जांच के त्वरित समापन को सुनिश्चित करने के लिए प्रेरित किया है ताकि एक आरोपी व्यक्ति को लंबे समय तक हिरासत में रहने से उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अनावश्यक रूप से वंचित न किया जाए। हमारी राय में,

हमारे सामने पूरी बहस को जांच के त्वरित समापन के दृष्टिकोण से और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दृष्टिकोण से भी देखा जाना चाहिए, न कि विशुद्ध रूप से शब्दकोश या पाठ्य के दृष्टिकोण से जैसा कि राज्य के विद्वान वकील द्वारा प्रचार किया गया है।

41. हम यह विचार इस बात को ध्यान में रखते हुए रखते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संविधान के अनुच्छेद 21 के मामलों में हमेशा औपचारिक या तकनीकी होने की सलाह नहीं दी जाती है। इतिहास.

इस न्यायालय और अन्य संवैधानिक न्यायालयों के व्यक्तिगत स्वतंत्रता न्यायशास्त्र में बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट और मुख्य न्यायाधीश या न्यायालय को संबोधित पत्र के आधार पर भी विचार किए जाने वाले अन्य रिटों के लिए याचिकाएं शामिल हैं।’

इसलिए, अदालतें अनुच्छेद 21 में निहित अधिकारों को छूने वाले किसी भी मुद्दे पर विचार करते समय कठोर या औपचारिक दृष्टिकोण नहीं अपना सकती हैं।

17.8. हम एस. कासी बनाम राज्य, (2021) 12 एस. सी. सी. 1 में इस न्यायालय के हाल के फैसले का भी लाभ के साथ उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह कहा गया था कि धारा 167 (2) के तहत डिफॉल्ट जमानत का अक्षम्य अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का एक अभिन्न अंग है, और जमानत के उक्त अधिकार को महामारी की स्थिति के दौरान भी निलंबित नहीं किया जा सकता है जैसा कि वर्तमान में प्रचलित है। इस बात पर जोर दिया गया कि अभियुक्त के स्वतंत्र होने के अधिकार को जांच जारी रखने और आरोप पत्र प्रस्तुत करने के राज्य के अधिकार पर प्राथमिकता दी जाती है।

911

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 912

17.9. इसके अतिरिक्त, यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि दंडात्मक कानून के निर्माण में किसी भी अस्पष्टता के मामले में, अदालतों को उस व्याख्या का समर्थन करना चाहिए जो व्यक्तिगत अभियुक्त और राज्य तंत्र के बीच सर्वव्यापी शक्ति असमानता को देखते हुए अभियुक्त के अधिकारों की रक्षा करने की दिशा में झुकती है। यह न केवल मूल दंडात्मक कानूनों के मामले में लागू होता है, बल्कि अभियुक्त की स्वतंत्रता में कटौती के लिए प्रदान की जाने वाली प्रक्रियाओं के मामले में भी लागू होता है।

17.10. विशेष रूप से सी. आर. पी. सी. के संबंध में, वस्तुओं और कारणों का विवरण (ऊपर दिया गया) निर्माण में एक महत्वपूर्ण सहायता है। धारा 167 (2) की व्याख्या विधायिका द्वारा व्यक्त किए गए तीन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए, अर्थात् निष्पक्ष सुनवाई, त्वरित जांच और सुनवाई सुनिश्चित करना और समाज के गरीब वर्गों के हितों की रक्षा करने वाली एक तर्कसंगत प्रक्रिया निर्धारित करना। ये उद्देश्य और कुछ नहीं बल्कि अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत व्यापक मौलिक अधिकार के उपसमुच्चय हैं।

17.11. इसलिए, यह अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार को बनाए रखने के दृष्टिकोण से है कि हम वर्तमान मामले में उत्पन्न हुई दुविधा को हल करने के उद्देश्य से धारा 167 (2) की विभिन्न न्यायिक व्याख्याओं को स्पष्ट और सामंजस्य करेंगे।"

(मूल और आपूर्ति में जोर)

41. उक्त प्रावधान से देय अधिकार के परिणामस्वरूप, अदालतों को इसे उचित प्रभाव देना होगा, और इस प्रकार इस अवधि के बाद कोई भी निरोध निश्चित रूप से अवैध होगा, क्योंकि यह संबंधित व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए एक खतरा है। इसलिए, यह न केवल जांच एजेंसी का कर्तव्य है, बल्कि अदालतों का भी कर्तव्य है कि वे यह देखें कि किसी आरोपी को धारा **167 (2)** का लाभ मिले।"

(जोर दिया गया) 66। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उप-धारा (3) एक मजिस्ट्रेट को प्राधिकरण प्रदान करते समय बोलने, तर्कपूर्ण आदेश द्वारा कारणों को दर्ज करने के लिए वारंट करती है। जैसा कि कहा गया है, यह एक न्यायिक आदेश होने के नाते, एक अभियुक्त के अधिकारों को छूते हुए, पर्याप्त कारण दर्ज किए जाने की उम्मीद है। अनावश्यक है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

बता दें कि पारित ऐसा कोई भी आदेश उच्च न्यायिक मंच के समक्ष चुनौती देने के लिए उत्तरदायी है, हालांकि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के माध्यम से नहीं।

धन शोधन रोकथाम अधिनियम, 2002 की धारा 19 और आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 के बीच अंतर-आवेदन:

67. हम पहले ही उस अनिवार्य कार्य को छू चुके हैं जो एक मजिस्ट्रेट को रिमांड के मामले से निपटने के दौरान करना होता है। उनसे एक संतुलनकारी कार्य करने की उम्मीद की जाती है। एक नियम के रूप में, जांच 24 घंटे के भीतर पूरी की जानी है और इसलिए यह संबंधित जांच एजेंसी पर है कि वह मजिस्ट्रेट को अपनी हिरासत की आवश्यकता पर पर्याप्त सामग्री के साथ संतुष्ट करे, चाहे वह पुलिस हो या अन्य। न्यायिक आदेश पारित करते समय इस महत्वपूर्ण कारक को ध्यान में रखा जाना चाहिए। हम दोहराते हैं कि पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19, जो सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 द्वारा पूरक है, एक

गिरफ्तार व्यक्ति को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करती है। यदि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 लागू नहीं होती है, तो मजिस्ट्रेट की रिमांड या अन्यथा कोई भूमिका नहीं है।

68. पी. एम. एल. ए., 2002 के तहत किसी आरोपी व्यक्ति को किसी प्राधिकरण को रिमांड पर दिए जाने पर इस तरह के मजिस्ट्रेट की एक अलग भूमिका होती है। यह सुनिश्चित करना उनका बाध्य कर्तव्य है कि पीएमएलए, 2002 की धारा 19 का विधिवत पालन किया जाए और कोई भी विफलता गिरफ्तार व्यक्ति को रिहा करने का हकदार बनाएगी। मजिस्ट्रेट पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 (1) के तहत प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश पर भी विचार करेगा। सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 भी पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 को प्रभावी बनाने के लिए है और इसलिए मजिस्ट्रेट को इसके उचित अनुपालन के बारे में खुद को संतुष्ट करना है। इस तरह की संतुष्टि पर, वह एक प्राधिकरण के पक्ष में हिरासत के अनुरोध पर विचार कर सकता है, क्योंकि पीएमएलए, 2002 की धारा 62, उस प्राधिकरण के बारे में नहीं बताती है जो पीएमएलए, 2002 की धारा 19 के जनादेश का पालन न करने के लिए कार्रवाई करना है। मजिस्ट्रेट द्वारा किसी व्यक्ति को उसके समक्ष पेश किए जाने पर रिमांड किया जा रहा है, एक स्वतंत्र इकाई होने के नाते, किसी दिए गए मामले में उक्त प्रावधान को लागू करने के लिए उसके लिए पूरी तरह से खुला है। इसे अन्यथा रखने के लिए, संबंधित मजिस्ट्रेट उपयुक्त प्राधिकारी है जिसे पीएमएलए, 2002 की धारा 19 के तहत अनिवार्य सुरक्षा उपायों के अनुपालन के बारे में संतुष्ट किया जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर, रिमांड के लिए, हम आगे नहीं जाना चाहते हैं क्योंकि इस अदालत ने सत्यजीत बल्लूभाई मामले में इस पर विचार किया है।

देसाई बनाम गुजरात राज्य, (2014) 14 एससीसी 434:

913

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 914

“9. कानूनी स्थिति और मामले के मौजूदा तथ्यों के आलोक में इसमें शामिल मुद्दे पर विचार करने और विचार-विमर्श करने के बाद, हम अपीलकर्ताओं की ओर से उठाई गई याचिका में यह कहते हैं कि पुलिस रिमांड के लिए आदेश देना एक अपवाद होना चाहिए न कि एक नियम और इसके लिए जांच एजेंसी को एक मजबूत मामला बनाने की आवश्यकता है और उसे विद्वान मजिस्ट्रेट को संतुष्ट करना चाहिए कि पुलिस हिरासत के बिना पुलिस अधिकारियों के लिए आगे की जांच करना असंभव होगा और केवल उसी स्थिति में पुलिस हिरासत को उचित ठहराया जाएगा क्योंकि विशेष रूप से मजिस्ट्रेट स्तर पर अधिकारी खुद को याद दिलाने के लिए अच्छा करेंगे कि पुलिस हिरासत में हिरासत आम तौर पर अनुचित है।

कानून द्वारा। कानून के प्रावधानों में कहा गया है कि इस तरह की नजरबंदी/पुलिस रिमांड की अनुमति केवल मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक रूप से जांच किए गए कारणों के लिए दी गई विशेष परिस्थितियों में और केवल ऐसे सीमित उद्देश्यों के लिए दी जा सकती है जिनकी मामले की आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यकता हो। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की योजना इस संबंध में स्पष्ट है और इसका उद्देश्य अभियुक्त को उन तरीकों से बचाना है जो कुछ अति उत्साही और बेईमान पुलिस अधिकारियों द्वारा अपनाए जा सकते हैं जो कभी-कभी किसी इच्छुक पक्ष के कहने पर भी हो सकते हैं। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि पुलिस हिरासत हालांकि पूरी जांच का अंत नहीं है, फिर भी यह विशेष रूप से गंभीर और जघन्य अपराधों की जांच में इसकी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। विधायिका ने भी इस पर ध्यान दिया और इसलिए सीमित पुलिस हिरासत की अनुमति दी है।”

(जोर दिया गया) 69। पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 (1) और सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 के बीच परस्पर क्रिया, जैसा कि चर्चा की गई है, पहले वाले के समापन के बाद बाद वाले को लागू करने में सुविधा प्रदान करेगी। यह नहीं कहा जा सकता है कि जब गिरफ्तारी की बात आती है तो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) किसी प्राधिकारी पर लागू होती है, लेकिन हिरासत पर नहीं।

70. बाहरी सहायता की आवश्यकता केवल तभी होगी जब कोई कमी हो, विशेष रूप से जब प्रावधान समान सामग्री के हों। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 और सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 आदि जैसे कुछ कानूनों में एक स्पष्ट प्रावधान है जो गिरफ्तारी और फिर पुलिस को हिरासत में लेने के उद्देश्य से अधिकृत अधिकारियों को पुलिस अधिकारियों की शक्तियां प्रदान करता है। इसका मतलब यह नहीं है कि

पी. एम. एल. ए., 2002 के अधीन शक्ति, जिसे सी. आर. पी. सी., 1973 के साथ पढ़ा जाता है, अभिरक्षा मांगने के लिए अधिकृत कार्यालय को दी जाती है। उक्त तर्क में एक भ्रान्ति है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) को टुकड़ों में लागू नहीं किया जा सकता है। प्रावधान का आवेदन केवल गिरफ्तारी के लिए नहीं हो सकता है, बल्कि हिरासत के लिए नहीं हो सकता है। इस तरह का तर्क गिरफ्तार व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी खतरनाक है क्योंकि यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के प्रावधान के तहत प्रदान किया गया है।

उपलब्ध नहीं होगा। विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर):

“88. ...यह प्रस्तुति 1973 की संहिता की धारा 167 की आवश्यकता का पालन करने के लिए भी है। धारा 19 में कुछ भी नहीं है, जो 1973 की संहिता की धारा 167 के तहत उत्पादन की आवश्यकता के विपरीत है, लेकिन धारा 19 (3) के संदर्भ में 2002 के अधिनियम के तहत एक स्पष्ट वैधानिक आवश्यकता होने के कारण, इसका अनुपालन अधिकृत अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए।...”

71. दीपक महाजन (ऊपर):

“106. हमारी सुविचारित राय में, ओ. पी. गुप्ता और एम. के. एस. अबू बकर और केरल उच्च न्यायालय और गुजरात उच्च न्यायालय में लिया गया दृष्टिकोण तार्किक और सही है और हम इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में दिए गए कारणों के लिए इसे स्वीकार करते हैं। हम वास्तव में, एफ. ई. आर. ए. की धारा 35 (2) और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 (2) का यह अर्थ लगाने में कोई अभेद्यता नहीं देखते हैं कि उक्त प्रावधान धारा 167 (1) का स्थान लेते हैं और इसके विकल्प के रूप में काम करते हैं जो उसमें निहित सभी आवश्यक बुनियादी शर्तों को पर्याप्त रूप से पूरा करते हैं और इसके परिणामस्वरूप धारा 167 की उप-धारा (1) के इस तरह के प्रतिस्थापन पर, उन विशेष अधिनियमों के तहत गिरफ्तार व्यक्ति एक अभियुक्त व्यक्ति होगा जिसे मजिस्ट्रेट द्वारा धारा (2) के तहत हिरासत में लिया जाएगा।

धारा 167। पारित करते हुए, यह कहा जा सकता है कि धारा 167 (1) में कोई अभिव्यक्ति 'पुलिस अधिकारी' तैनात नहीं है और न ही यह धारा 167 (2) के किसी भी हिस्से में दिखाई देती है। धारा 167 (2) के तहत किसी व्यक्ति को हिरासत में लेने का अधिकार किसी भी अभियोजन एजेंसी द्वारा की जाने वाली जांच में सहायता करता है, जिसे जांच की शक्ति दी गई है।

× × ×

× × ×

× × ×

108. 'जाँच' शब्द को वर्तमान संहिता की धारा 2 (एच) के तहत परिभाषित किया गया है [जो 915 की धारा 4 (1) (बी) का सटीक पुनरुत्पादन है।

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. सुंदरेश, जे.] 916 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

पुरानी संहिता] जो एक समावेशी अवज्ञा है जिसमें पुलिस अधिकारी या किसी ऐसे व्यक्ति (मजिस्ट्रेट के अलावा) द्वारा किए गए साक्ष्य के संग्रह के लिए संहिता के तहत सभी कार्यवाहियां शामिल हैं जो इस संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा अधिकृत हैं। उक्त शब्द 'जाँच' संहिता के पूरे ताने-बाने में चलता है। इस न्यायालय के साथ-साथ विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों की एक लंबी प्रक्रिया है जिसमें विस्तार से बताया गया है कि 'जाँच' शब्द का क्या अर्थ है और क्या है? इस मामले के उद्देश्य के लिए उन सभी निर्णयों को दोहराना आवश्यक नहीं है सिवाय इसके कि

एच. एन. रिशबुद बनाम दिल्ली राज्य। इस निर्णय में कहा गया है कि

मान लिया कि: (एस. सी. आर. पी. 1157-58) "संहिता जांच के तहत आम तौर पर निम्नलिखित चरण होते हैं: (1) घटनास्थल पर आगे बढ़ते हुए, (2) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की पुष्टि, (3) संदिग्ध अभियुक्त की खोज और गिरफ्तारी, (4) अपराध करने से संबंधित साक्ष्य का संग्रह जिसमें (क) विभिन्न व्यक्तियों (अभियुक्त सहित) की जांच और उनके

बयानों को लिखित रूप में कम करना शामिल हो सकता है, यदि अधिकारी यह समझता है कि (ख) जाँच के लिए और मुकदमे में पेश करने के लिए आवश्यक समझी जाने वाली चीजों की जब्ती के स्थानों की खोज, और (5) इस बारे में राय बनाना कि क्या एकत्र की गई सामग्री पर अभियुक्त को मुकदमे के लिए मजिस्ट्रेट के सामने रखने का मामला है और यदि ऐसा है तो आरोप के आधार पर उसके लिए आवश्यक कदम उठाना -"

जांच के क्रम में शामिल कदम, जैसा कि रिशबुद मामले में बताया गया है, एम. पी. बनाम राज्य में दोहराया गया है। मुबारक अली।

109. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह सच है कि ऐसे निर्णयों की एक श्रृंखला है जिसमें यह विचार रखा गया है कि प्रवर्तन का एक अधिकारी या सीमा शुल्क अधिकारी एक पुलिस अधिकारी नहीं है, हालांकि ऐसे अधिकारी गिरफ्तारी और अन्य समान शक्तियों के साथ निहित हैं। रमेश चंद्र बनाम डब्ल्यू. बी. राज्य और इलियास बनाम सीमा शुल्क कलेक्टर, मद्रास। उपरोक्त निर्णयों में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि विशेष अधिनियमों के तहत उपरोक्त अधिकारियों के पास संहिता के अध्याय **XII** के तहत एक अपराध की जांच करने के लिए पुलिस अधिकारी की शक्तियां निहित नहीं हैं, जिसमें धारा **173** के तहत एक रिपोर्ट अग्रेषित करने की शक्ति भी शामिल है।

कोड। पंजाब राज्य बनाम बरकत राम और बडकू ज्योति सावंत बनाम मैसूर राज्य भी देखें।

× × ×

× × ×

× × ×

113. यद्यपि प्रवर्तन या सीमा शुल्क का एक अधिकृत अधिकारी संहिता के अध्याय **XII** के तहत विचार के अनुसार जांच नहीं कर रहा है, फिर भी उन अधिकारियों को गिरफ्तारी, जब्ती, पूछताछ आदि जैसी कुछ समान शक्तियां प्राप्त हैं। इसके अलावा, उन पर एक वैधानिक कर्तव्य लगाया गया है कि वे संविधान के अनुच्छेद 22 (1) और संहिता की धारा 50 के तहत ऐसी गिरफ्तारी के आधार के बारे में गिरफ्तार व्यक्ति को सूचित करें। इसलिए, उन्हें अनिवार्य रूप से अपने वैधानिक कार्यों का रिकॉर्ड बनाना होगा, जिसमें सूचना देने वाले का नाम, साथ ही उस व्यक्ति का नाम, जिसने संहिता के किसी अन्य प्रावधान का उल्लंघन किया है और जो अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है, उनके द्वारा प्राप्त जानकारी की प्रकृति, गिरफ्तारी का समय, प्रतिबंधित पदार्थ की जब्ती, यदि कोई हो, और अपराध का पता लगाने के दौरान दर्ज किए गए बयान शामिल हैं।

× × ×

× × ×

× × ×

116. इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि एक पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 173 के तहत राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अपराध की जांच करता है और शिकायतकर्ता बन जाता है, जबकि विशेष अधिनियमों के तहत अभियोजन एजेंसी शिकायतकर्ता के रूप में शिकायत करती है, यानी एफ. ई. आर. ए. के मामले में धारा 61 (ii) और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 137 के तहत। विशेष रूप से कहने के लिए, पुलिस अधिकारी संहिता की धारा 173 के तहत जांच की समाप्ति के बाद एक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है, जिस पर मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190 (1) (बी) के तहत रिपोर्ट में प्रकट किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है, जबकि विशेष अधिनियमों के सशक्त या अधिकृत अधिकारी को केवल अधिनियम के प्रावधानों के तहत किसी भी अपराध का गठन करने वाले तथ्यों की शिकायत दर्ज करनी होती है, जिसकी प्राप्ति पर मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190 (1) (ए) के तहत उक्त अपराध का संज्ञान ले सकता है। पुलिस रिपोर्ट पर या तथ्यों की शिकायत प्राप्त करने पर अपराध का संज्ञान लेने के बाद, मजिस्ट्रेट को संहिता के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार या विशेष अधिनियमों के तहत निर्धारित विशेष प्रक्रिया, यदि कोई हो, के तहत मामले को आगे बढ़ाना होता है।

इसलिए, 'जाँच' शब्द केवल पुलिस जाँच तक ही सीमित नहीं हो सकता है, लेकिन दूसरी ओर, उक्त शब्द व्यापक अर्थ और व्यावहारिक है ताकि किसी भी एजेंसी द्वारा की गई जाँच को शामिल किया जा सके, चाहे वह पुलिस अधिकारी हो या सशक्त या अधिकृत अधिकारी हो या मजिस्ट्रेट के निर्देश के तहत पुलिस अधिकारी न हो, ताकि जाँच करने की शक्ति मजिस्ट्रेट के पास निहित हो।

xxx

xxx

xxx

120. उपरोक्त चर्चा से यह नहीं कहा जा सकता है कि या तो प्रवर्तन के अधिकारी या सीमा शुल्क अधिकारी को जांच की शक्ति नहीं है, हालांकि एक पुलिस अधिकारी के मामले में एक वित्तीय रिपोर्ट दर्ज करने की शक्ति नहीं है।

xxx

xxx

xxx

128. संक्षेप में, धारा 4 व्यापक है और यह कि धारा 5 धारा 4 (2) का अपमान नहीं है और यह केवल क्षेत्रीय और अन्य क्षेत्राधिकार के मामले में संहिता के लागू होने की सीमा से संबंधित है, लेकिन धारा 4 (2) के प्रभावी अधिनियम को रद्द नहीं करती है। संक्षेप में, इस संहिता के प्रावधान विशेष अधिनियम या संहिता की अधिकारिता या प्रयोज्यता को छोड़कर किसी विशेष प्रावधान में किसी भी विपरीत प्रावधान के अभाव में उस सीमा तक लागू होंगे। वास्तव में, धारा 4 (2) का दूसरा अंग स्वयं संहिता पढ़ने के प्रावधानों के अनुप्रयोग को सीमित करता है, लेकिन कुछ समय के लिए किसी भी अधिनियम के अधीन है जो ऐसे अपराधों की जांच, पूछताछ, प्रयास या अन्यथा निपटने के तरीके या स्थान को विनियमित करता है।"

xxx

xxx

xxx

131. यह निवेदन कि चूंकि एफ. ई. आर. ए. या सीमा शुल्क अधिनियम में संहिता की शर्तों के भीतर कोई जांच नहीं है, संहिता की धारा 4 (2) की कोई भूमिका नहीं हो सकती है, इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में "जांच का क्या अर्थ है और क्या है" विवाद का निपटारा करते समय हमारे द्वारा दिए गए कारणों के लिए खारिज किया जाना चाहिए।

132. उपरोक्त कारणों से, हम मानते हैं कि संहिता की धारा 4 (2) का संचालन सीधे क्षेत्र की ओर आकर्षित होता है।

एफ. ई. आर. ए. और सीमा शुल्क अधिनियम सहित विशेष कानूनों के तहत अपराध की जांच, जांच और परीक्षण और इसके परिणामस्वरूप संहिता की धारा 167 को विशेष अधिनियमों के तहत अपराध की जांच या जांच के दौरान भी लागू किया जा सकता है क्योंकि धारा 167 के संचालन को छोड़कर इसके विपरीत कोई विनिर्दिष्ट सी प्रावधान नहीं है।

xxx

xxx

xxx

134. विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयों की एक श्रृंखला है, निश्चित रूप से कुछ अपवादों के साथ, यह विचार रखते हुए कि एक मजिस्ट्रेट जिसके सामने एफ. ई. आर. ए. या सीमा शुल्क अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा गिरफ्तार किया गया व्यक्ति पेश किया जाता है, धारा 167 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए निरोध को अधिकृत कर सकता है। अन्यथा एफ. ई. आर. ए. की धारा 35 (2) या सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 (2) के प्रावधानों के तहत, उन विशेष अधिनियमों की उप-धारा (3) के तहत जब गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर रिहा नहीं किया गया था, तो बिना अनावश्यक

देरी के मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति को लेने का अनिवार्य निर्देश उद्देश्यहीन और अर्थहीन हो जाएगा और यह कहना कि अदालतों के पास जमानत से इनकार करने की स्थिति में भी गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को असहाय दर्शक के रूप में मुक्त करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा, जिसे "विधायी मामला चूक" या कानूनी गलती या कमी कहा जाता है, यह पूरी तरह से अतार्किक और बेतुका हो जाएगा।"

(जोर दिया गया)

72. अशोक मुनीलाल जैन (ऊपर):

"3. हम निचली अदालत के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को भी देख चुके हैं। हम शुरुआत में ही कह सकते हैं कि जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है, उसने अपने उपरोक्त दृष्टिकोण के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया है, सिवाय इसके कि निचली अदालत के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है कि धारा 167 (2) दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान पीएमएलए अधिनियम के तहत मामलों पर लागू नहीं होते हैं। निचली अदालत द्वारा कही गई कानूनी स्थिति सही नहीं लगती है और यहां तक कि प्रतिवादी की ओर से पेश होने वाले विद्वान अटॉर्नी जनरल भी इस पर विवाद नहीं कर सकते हैं। हम।

यह दर्ज किया जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 (2) के प्रावधानों के अनुसार, 919

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. सुंदरेश, जे.] 920 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

उसमें निहित प्रक्रिया विशेष कानूनों के संबंध में भी लागू होती है जब तक कि प्रावधानों की प्रयोज्यता स्पष्ट रूप से वर्जित न हो। इसके अलावा, पी. एम. एल. ए. अधिनियम की धारा 44 से 46 विशेष रूप से पी. एम. एल. ए. अधिनियम के तहत परीक्षणों में सी. आर. पी. सी. के प्रावधानों को शामिल करती है। इस प्रकार, न केवल यह कि पी. एम. एल. ए. अधिनियम में सी. आर. पी. सी. की प्रयोज्यता को छोड़कर कोई प्रावधान नहीं है, इसके विपरीत, सी. आर. पी. सी. के प्रावधानों को विशिष्ट सी समावेश द्वारा शामिल किया जाता है। यहां तक कि पी. एम. एल. ए. अधिनियम की धारा 65 भी इस संबंध में किसी भी संदेह से परे विवाद का निपटारा करती है जो इस प्रकार है:

"65. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 लागू करने के लिए।—प्रावधान

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा, जहां तक वे इस अधिनियम के प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं, इस अधिनियम के तहत गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती, कुर्की, विश्वासघात, जांच, अभियोजन और अन्य सभी कार्यवाही के लिए लागू होगी।

4. हम प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन, (1994) 3 एस. सी. सी. 440 में इस न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख कर सकते हैं: 1994 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 785, जिसमें यह निम्नानुसार आयोजित किया गया था: (एस. सी. सी. पी. 480, पैरा 136)

"136. परिणामस्वरूप, हम मानते हैं कि धारा 167 की उप-धारा (1) और (2) एफ. ई. आर. ए. की धारा 35 और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 के प्रावधानों के तहत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को पेश करने और हिरासत में रखने के संबंध में पूरी तरह से लागू होती हैं और मजिस्ट्रेट के पास धारा 167 (2) के तहत एफ. ई. आर. ए. के तहत प्रवर्तन के किसी भी अधिकृत अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को हिरासत में लेने और एफ. ई. आर. ए. की धारा 35 (2) के अनुपालन में मजिस्ट्रेट के पास ले जाने का अधिकार क्षेत्र है।

5. इस प्रकार, हम उच्च न्यायालय की इस राय से सहमत नहीं हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के प्रावधान पीएमएलए अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होंगे। वर्तमान मामले में, चूंकि अपीलार्थी को हिरासत में लिए जाने की तारीख से 60 दिनों की समाप्ति के बाद भी कोई शिकायत दर्ज नहीं की गई थी, इसलिए वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) में निहित प्रावधानों को देखते हुए वैधानिक जमानत का हकदार था।

(जोर दिया गया)

राज्यों के हस्तक्षेप को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत:

73. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 के दायरे और दायरे पर चर्चा करने के बाद, हम मानते हैं कि यह एक दंडात्मक कानून होने के नाते, एक शाब्दिक, स्वाभाविक और सरल व्याख्या दी जानी चाहिए। जब एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं होती है और कानून स्पष्ट रूप से अपने इरादे को व्यक्त करता है, तो न्यायिक शल्य चिकित्सा के कार्य से बचना सबसे अच्छा है। प्रावधान में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि रिमांड के पहले 15 दिनों के बाद किसी जांच एजेंसी के पक्ष में कोई हिरासत नहीं हो सकती है, जैसा कि विस्तार से चर्चा किए गए स्पष्ट प्रावधान के विपरीत है। इसी तरह, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 के आशय को समझते समय, प्रावधान को परंतुक के साथ पढ़ा जाना चाहिए। यह

राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य, (2017) 15 एस. सी. सी. 67: “67. किसी भी वैधानिक प्रावधान की व्याख्या करते समय, इसे हमेशा व्याख्या के एक सुनहरे नियम के रूप में स्वीकार किया गया है कि विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों को उनका स्वाभाविक अर्थ दिया जाना चाहिए। आम तौर पर, अदालतों को वैधानिक प्रावधान से शब्द जोड़ने या घटाने में संकोच होना चाहिए। विधायी प्रावधान को हमेशा इस तरह से पढ़ने के लिए प्रभावी बनाया जाना चाहिए कि शब्दों की कोई बर्बादी न हो और किसी भी निर्माण से बचा जाना चाहिए जो कानून के कुछ शब्दों को अनावश्यक बनाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि शब्दों का स्वाभाविक अर्थ ऐसी व्याख्या की ओर ले जाता है जो अधिनियम के उद्देश्यों के विपरीत है या प्रावधान को अव्यवहारिक या अत्यधिक अनुचित और मनमाना बनाता है, तो अदालतें या तो शब्दों को जोड़ती हैं या शब्दों को घटाती हैं या कानून को पढ़ती हैं, लेकिन यह तभी किया जाना चाहिए जब उपयोग की गई भाषा में अस्पष्टता हो। मेरे विचार में, संहिता की धारा 167 (2) के शब्दों में कोई अस्पष्टता नहीं है और इसलिए, अश्विनी कुमार घोष बनाम अरबिंद बोस, (1952) 2 एस. सी. सी. 237 में पतंजलि शास्त्री, सी. जे. द्वारा निर्धारित सिद्धांत का पालन करना बुद्धिमानी होगी: ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 369, जहाँ उन्होंने बहुत ही स्पष्ट रूप से निम्नलिखित रूप में आयोजित किया: (ए. आई. आर. पी. 377, पैरा 26)

“26. ... किसी कानून में शब्दों को अनुचित अधिशेष के रूप में दरकिनार करना निर्माण का एक ठोस सिद्धांत नहीं है, यदि वे कानून के चिंतन के भीतर परिस्थितियों में उचित अनुप्रयोग कर सकते हैं।”

921

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. सुंदरेश, जे.] 922 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

जुगलकिशोर सराफ बनाम रॉ कॉटन कंपनी लिमिटेड, ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 376,

एस. आर. दास, जे. ने इस न्यायालय की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया: (आकाशवाणी पृष्ठ 381, पैरा 6)

“6. ... कानूनों के निर्माण का मुख्य नियम कानूनों को शाब्दिक रूप से पढ़ना है, यानी विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों को उनका सामान्य, प्राकृतिक और व्याकरणिक अर्थ देना।”

68. व्याख्या के बाहरी साधनों का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब कानून की भाषा अस्पष्ट हो और दो या दो से अधिक अर्थों को स्वीकार करे। जब भाषा स्पष्ट होती है या अस्पष्टता को वैधानिक व्याख्या के अधिक सामान्य नियमों के तहत हल किया जा सकता है, तो अदालत वैधानिक व्याख्या के बाहरी साधनों को देखने के लिए अनिच्छुक होगी।

69. गजेंद्रगडकर, जे. ने कनई लाल सूर बनाम परमनिधि सधुखान, ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 907 में इस न्यायालय की ओर से बोलते हुए कहा: (आकाशवाणी पृष्ठ 910, पैरा 6)

“6. ... निर्माण का पहला और प्राथमिक नियम यह है कि विधायिका का इरादा विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों में पाया जाना चाहिए।”

70. वैधानिक निर्माण के ये ठोस सिद्धांत आज भी कायम हैं। जब शब्दों का स्वाभाविक अर्थ स्पष्ट और स्पष्ट हो, तो किसी भी बाहरी सहायक का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।”

(जोर दिया गया) 74। न्यायालय के किसी निर्णय को एक कानून के रूप में, संदर्भ से बाहर और आवश्यक प्रावधानों की अज्ञानता में नहीं पढ़ा जा सकता है। केंद्रीय आयुक्त

आबकारी, बेंगलूर बनाम श्रीकुमार एजेंसियां और अन्य, (2009) 1 एस. सी. सी. 469: “5. “15. ... न्यायालयों को इस बात पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर निर्भरता नहीं रखनी चाहिए कि निर्णय की तथ्य स्थिति के साथ तथ्यात्मक स्थिति कैसे आती है, जिस पर निर्भरता रखी गई है। अदालतों के अवलोकन को न तो यूक्लिड के सिद्धांतों के रूप में पढ़ा जाना चाहिए

और न ही कानून के प्रावधानों के रूप में और वह भी उनके संदर्भ से बाहर लिया जाना चाहिए। इन टिप्पणियों को उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वे बताए गए प्रतीत होते हैं। अदालतों के निर्णय नहीं होने चाहिए

कानूनों के रूप में माना जाता है। किसी कानून के शब्दों, वाक्यांशों और प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए, न्यायाधीशों के लिए लंबी चर्चा शुरू करना आवश्यक हो सकता है, लेकिन चर्चा व्याख्या करने के लिए होती है न कि इसकी अवहेलना करने के लिए। न्यायाधीश विधियों की व्याख्या करते हैं, वे निर्णयों की व्याख्या नहीं करते हैं। वे विधियों के शब्दों की व्याख्या करते हैं; उनके शब्द नहीं हैं

विधियों के रूप में व्याख्या की जानी चाहिए। लंदन ग्रेविंग डॉक कं. लिमिटेड बनाम

हॉर्टन [1951 एसी 737:(1951) 2 सभी ई. आर. 1 (एच. एल.)] (पी. 761 पर ए. सी.) लॉर्ड मैकडर्मोट ने कहा: (सभी ई. आर. पी. 14 सी-डी)

‘... निसन्देह, इस मामले का निपटारा केवल विल्स, जे. के इप्सिसिमा वर्बा को संसद के एक अधिनियम का हिस्सा मानकर और उसके लिए उपयुक्त व्याख्या के नियमों को लागू करके नहीं किया जा सकता है। यह उस सबसे प्रतिष्ठित न्यायाधीश द्वारा वास्तव में उपयोग की जाने वाली भाषा को दिए जाने वाले बड़े महत्व को कम करने के लिए नहीं है।’

16. होम ऑफिस सीई बनाम डोरसेट यॉट कंपनी लिमिटेड [1970 एसी 1004:(1970) 2 डब्ल्यूएलआर 1140:(1970) 2 सभी ई. आर. 295 (एच. एल.)] लॉर्ड रीड ने कहा: (सभी ई. आर. पी. 297 जी-एच) ‘. लॉर्ड एटकिन के भाषण को ऐसा नहीं माना जाना चाहिए जैसे कि यह एक वैधानिक अवज्ञा हो। नई परिस्थितियों में इसके लिए योग्यता की आवश्यकता होगी।’ मेगारी, जे. शेबर्ड होम्स लिमिटेड बनाम संसंध (नंबर 2) [(1971) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1062:(1971) 2 सभी ई. आर. 1267] ने देखा: (सभी ई. आर. पी. 1274 घ) ‘. किसी को भी, निश्चित रूप से, रसेल, एल. जे. के एक आरक्षित निर्णय का अर्थ इस तरह नहीं लगाना चाहिए जैसे कि यह संसद का एक अधिनियम हो।

....’ और, ब्रिटिश रेलवे बोर्ड बनाम हैरिंगटन [1972 एसी 877:

(1972) 2 डब्ल्यूएलआर 537:(1972) 1 सभी ई. आर. 749 (एच. एल.)] लॉर्ड मॉरिस ने कहा: (सभी ई. आर. पी. 761 सी)

‘किसी भाषण या निर्णय के शब्दों को विधायी अधिनियम के शब्दों के रूप में मानने में हमेशा खतरा होता है, और यह याद रखना चाहिए कि किसी विशेष मामले के तथ्यों की स्थापना में किए गए न्यायिक बयान।’

17. एक अतिरिक्त या अलग तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच अंतर की दुनिया बना सकता है। किसी निर्णय पर आंख मूंदकर भरोसा करके मामलों का निपटारा करना उचित नहीं है।

923

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. सुंदरेश, जे.] 924 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

18. मिसालों को लागू करने के मामले में हिदायतुल्ला, जे. के निम्नलिखित शब्द लोकस क्लासिकस बन गए हैं: (अब्दुल कयूम बनाम सी. आई. टी. [ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 680], ए. आई. आर. पी. 688, पैरा 19)

‘19.... प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले और दूसरे मामले के बीच घनिष्ठ समानता पर्याप्त नहीं है क्योंकि एक भी महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है। ऐसे मामलों को तय करने में, एक मामले के रंग का दूसरे के रंग से मिलान करके मामलों को तय करने के प्रलोभन (जैसा कि कार्डोजो ने कहा है) से बचना चाहिए। इसलिए यह तय करने के लिए कि एक मामला रेखा के किस तरफ पड़ता है, दूसरे मामले के साथ व्यापक समानता बिल्कुल भी निणायक नहीं है।’

‘पूर्ववर्ती का पालन केवल तब तक किया जाना चाहिए जब तक यह न्याय के मार्ग को चिह्नित करता है, लेकिन आपको मूल लकड़ी को काटना चाहिए और बगल की शाखाओं को काटना चाहिए अन्यथा आप खुद को झाड़ियों और शाखाओं में खो देंगे।

मेरा अनुरोध है कि न्याय के मार्ग को उन बाधाओं से दूर रखा जाए जो इसे बाधित कर सकती हैं।' “ [एड.:जैसा कि देखा गया है

भारत संघ बनाम अमृत लाल मनचंदा (2004) 3 एस. सी. सी. 75

पीपी. 83-84, पैरा 15-18।”

(जोर दिया गया)

75. सत्यपाल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2015) 15 एससीसी 613:“**12.** यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक कानून के परंतुक को अधिनियमित प्रावधान के विषय-वस्तु तक सीमित व्याख्या दी जानी चाहिए। इस न्यायालय के दिए गए निर्णय पर भरोसा रखा गया है

द्वारका प्रसाद बनाम द्वारका दास सराफ मामले में चार-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा,

(1976) 1 एस. सी. सी. 128, जिसका सुसंगत पैरा 18 इस प्रकार है:(एस. सी. सी. पी. 137)

“**18.** ... एक परंतुक अधिनियमन खंड के विषय-वस्तु तक सीमित होना चाहिए। यह निर्माण का एक तय नियम है कि एक परंतुक को प्रथम दृष्टया पढ़ा जाना चाहिए और उस प्रमुख मामले के संबंध में विचार किया जाना चाहिए जिसके लिए यह एक परंतुक है। यह एक अलग या स्वतंत्र अधिनियम नहीं है। शब्द मुख्य अधिनियमित करने वाले शब्दों पर निर्भर करते हैं जिन पर उन्हें एक परंतुक के रूप में रखा जाता है। वे.

उनके संदर्भ से तलाकशुदा के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है '(थॉम्पसन बनाम।

डिब्बिन, 1912 एसी 533 (एचएल))। यदि निर्माण का नियम यह है कि प्रथम दृष्टया एक परंतुक अपने संचालन में अधिनियमन खंड के विषय-वस्तु तक सीमित होना चाहिए, तो हमने जो रुख अपनाया है वह सही है। अधिनियम बनाने वाले खंड का विस्तार करने के लिए, जिसे परंतुक द्वारा संशोधित किया गया है, निर्माण के मौलिक नियम के खिलाफ पाप करता है कि एक परंतुक पर उस प्रमुख मामले के संबंध में विचार किया जाना चाहिए जिसके लिए यह एक परंतुक के रूप में खड़ा है। एक परंतुक आम तौर पर एक परंतुक होता है, हालांकि सुनहरा नियम यह है कि परंतुक सहित पूरे खंड को इस तरह से पढ़ा जाए कि वे पारस्परिक रूप से एक दूसरे पर प्रकाश डालते हैं और परिणामस्वरूप एक सामंजस्यपूर्ण निर्माण होता है।”

(जोर दिया गया) 13. इसके अलावा, 2 के बहुमत से इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ:1

एस. सुंदरम पिल्लई बनाम वी. आर. पट्टाबिरमन, (1985) 1 एस. सी. सी. 591 में

धारा के मूल प्रावधान और इसकी व्याख्या के नियमों के लिए परंतुक के दायरे की विस्तार से जांच की गई। प्रासंगिक अनुच्छेदों को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:(एस. सी. सी. पीपी. 607-08, पैरा 30, 32-33 और 36-37)

“30. पी. पी. पर कानूनों की व्याख्या में सारथी. 294-95 है

एक परंतुक के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांतों को एकत्र किया:(क) जब कोई किसी धारा को परन्तुक देता है तो स्वाभाविक धारणा यह होती है कि परन्तुक के लिए धारा के अधिनियमित करने वाले भाग में परन्तुक का विषय शामिल होता।

(ख) एक परंतुक का अर्थ उस खंड के पूर्ववर्ती भागों के संदर्भ में लगाया जाना चाहिए जिसमें इसे जोड़ा गया है।

(ग) जहां परंतुक सीधे किसी धारा के प्रतिकूल है, वहां परंतुक खड़ा रहेगा और धारा का निरसन माना जाएगा क्योंकि परंतुक निर्माताओं के बाद के इरादे को बताता है।

(घ) जहां धारा संदिग्ध है, एक परंतुक का उपयोग इसकी व्याख्या के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में किया जा सकता है; लेकिन जब यह स्पष्ट है, तो एक परंतुक उन शब्दों के अस्तित्व का संकेत नहीं दे सकता है जिनका खंड में कोई निशान नहीं है।

(ड) परंतुक मुख्य धारा के अधीन है।

(च) एक परंतुक बाध्यकारी कारणों के अलावा किसी अधिनियम को विस्तारित नहीं करता है।

(छ) कभी-कभी एक अनावश्यक परंतुक प्रचुर सावधानी के माध्यम से डाला जाता है।

(ज) एक प्रावधान पर एक निर्माण जो इसे धारा की शर्तों के साथ सामान्य सामंजस्य में लाता है, प्रबल होना चाहिए।

(i) जब कोई परंतुक अधिनियमित करने वाले भाग के प्रतिकूल होता है, तो परंतुक बाद के अधिनियम की पूर्ण शर्तों पर प्रबल नहीं होगा, जिसे पहले वाले के पूरक के रूप में पढ़ने का निर्देश दिया गया है।

(जे) एक परंतुक में कभी-कभी एक ठोस प्रावधान हो सकता है।" (जोर दिया गया)

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) क्या पुलिस कस्टडी को केवल पहले 15 दिनों की माँग के लिए प्रतिबंधित करती है?

76. हमने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के दायरे और दायरे पर अपनी व्याख्या दी है। उचित सम्मान के साथ, हम अनुपम जे. कुलकर्णी (उपरोक्त) में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत नहीं हैं कि पुलिस हिरासत केवल रिमांड के पहले 15 दिनों के भीतर होगी। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत कहीं भी ऐसी शर्त प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं पाई जाती है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत उल्लिखित "समय-समय पर", "ऐसी अभिरक्षा" और "समग्र रूप से" जैसे शब्दों पर ठीक से ध्यान नहीं दिया गया है और उनकी व्याख्या नहीं की गई है। जब अस्पष्टता की कोई झलक नहीं होती है तो एक सरल और स्वाभाविक व्याख्या की आवश्यकता होती है।

77. परंतुक के पीछे के इरादे का भी अर्थ नहीं लगाया गया है। सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 (2), जैसा कि कहा गया है, किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और उचित जांच के बीच एक संतुलनकारी कार्य करती है। शायद, यह न्यायालय पहले की सी. आर. पी. सी., 1898 को ध्यान में रख रहा था जो जांच की अवधि को केवल 15 दिनों तक सीमित करता है। एक बार जब अवधि 60 दिनों या 90 दिनों के रूप में दी जाती है, तो एक जांच एजेंसी को, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के प्रावधान के अनुरूप, सामान्य व्याख्या द्वारा भी सुविधा प्रदान की जाती है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

उक्त अवधि में फैली एक पुलिस हिरासत, लेकिन "पूरी" 15 दिनों के लिए है। हमें ऐसा लगता है कि कुछ शब्दों को जोड़ते समय एक स्पष्ट प्रावधान का सही अर्थ नहीं निकाला गया है।

78. चंगंती सत्यनारायणा बनाम आंध्र राज्य में निर्णय

प्रदेश, (1986) 3 एस. सी. सी. 141 का भी गलत अर्थ निकाला गया है। हालाँकि उक्त निर्णय में तथ्य थोड़े अलग हैं, लेकिन इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 की उप-धारा (2) को सही समझा है:

"16. जैसा कि धारा 167 की उप-धारा (2) के साथ-साथ धारा 309 की उप-धारा (2) का परंतुक (1) मजिस्ट्रेट की रिमांड की शक्तियों से संबंधित है, हालांकि अलग-अलग स्थितियों में, दोनों प्रावधान रिमांड की अवधि के संबंध में एक सामंजस्यपूर्ण अध्ययन की मांग करते हैं। इसलिए, यह इस प्रकार होगा कि धारा 167 की उप-धारा (2) में आने वाले "कुल मिलाकर 15 दिन" शब्द "एक बार में 15 दिनों" की अवधि के बराबर होंगे, लेकिन इस शर्त के अधीन कि यदि आरोपी को पुलिस हिरासत में भेजा जाना है तो रिमांड ऐसी अवधि के लिए होनी चाहिए जो किसी मामले की आवश्यकताओं के अनुरूप हो, जिसमें यदि आवश्यक हो तो प्रतिबंधित अवधि के लिए और विस्तार का प्रावधान हो, लेकिन किसी भी मामले में पुलिस हिरासत में रिमांड की कुल अवधि 15 दिनों से अधिक नहीं होनी चाहिए। जहां किसी अभियुक्त को रिमांड के एकल आदेश या एक से अधिक आदेश के अनुसार कानून के तहत अनुमत अधिकतम 15 दिनों की अवधि के लिए पुलिस हिरासत में रखा जाता है, जब रिमांड को प्रत्येक अवसर पर कम दिनों तक सीमित किया जाता है, तो आरोपी को आगे हिरासत में रखना आवश्यक है, यदि आवश्यक हो, तो न्यायिक हिरासत के लिए होना चाहिए और अन्यथा नहीं। विधायिका ने मामलों की प्रभावी जांच के लिए रिमांड के आदेश के तहत एक आरोपी को पुलिस हिरासत में रखने का प्रावधान किया है, साथ ही यह भी ध्यान रखा है कि किसी भी परिस्थिति

में, अपराध की गंभीरता या मामले की गंभीर प्रकृति के बावजूद, उसे कुल 15 दिनों की अवधि से अधिक पुलिस हिरासत में रखे जाने से आरोपी के हित खतरे में न पड़ें।"

उपरोक्त अंश पर अनुपम **J.Kulkarni (ऊपर)** में ध्यान दिया गया है जिसका अर्थ है कि हिरासत के साथ जांच केवल रिमांड के पहले 15 दिनों के भीतर ही अनुमत है।

79. यह मानते हुए भी कि अनुपम जे. कुलकर्णी (ऊपर) के पीछे का तर्क सही है, कानूनी उक्ति एक्ट्स क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट निश्चित रूप से लागू होगी। उक्त निर्णय, **927** में इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया है।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.] 928

दूसरों के बाद। इस न्यायालय की वृहत न्यायपीठ ने बुध सिंह बनाम.

पंजाब राज्य (2009) 9 एस. सी. सी. 266 ने मुख्य रूप से अनुपम जे. कुलकर्णी (ऊपर) में प्रस्तुत किए गए कार्यों को अपनी प्रमुखता दी। उक्त को अनुमति देना

व्याख्या जो हमारे सम्मानजनक दृष्टिकोण में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के अधिदेश के विपरीत है, जांच के लिए गंभीर पूर्वाग्रह का कारण बनेगी। इस न्यायालय द्वारा विकास मिश्रा (उपरोक्त) में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत होते हुए, जिसमें वास्तव में दिनों की गिनती के मुद्दे पर विचार किया गया था, हम दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के वास्तविक महत्व के बड़े मुद्दे को संदर्भित करने के लिए इच्छुक हैं कि क्या पुलिस के पक्ष में 15 दिनों की हिरासत की अवधि केवल रिमांड के पहले 15 दिनों के भीतर होनी चाहिए या जांच की पूरी अवधि-60 या 90 दिनों तक, जैसा भी मामला हो, होनी चाहिए। इस मुद्दे को एक बड़ी पीठ द्वारा एक आधिकारिक निर्णय पर एक कानूनी प्रस्ताव के रूप में रखने की आवश्यकता है, हालांकि यह इस मामले में उत्पन्न होने वाले तथ्यों और परिस्थितियों में हमारे विचार को नहीं बदलता है। इसके बावजूद, हम इन याचिकाओं पर चर्चा करने और निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ते हैं क्योंकि कानून द्वारा निर्देशित इस मामले के तथ्यों में एक निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है जैसा कि यहां मौजूद है और देखा गया है।

चर्चा

80. हम पहले ही बिना विस्तार से बताए मूलभूत तथ्यों का वर्णन कर चुके हैं। पेंडुलम के एक तरफ से दूसरी तरफ झूलने के साथ इस मामले का एक उतार चढ़ाव वाला इतिहास रहा है। इससे पहले के दो अवसरों पर, अपीलार्थी उच्च न्यायालय के समक्ष केवल इस न्यायालय द्वारा उलट दिए जाने में सफल रहा है। हम केवल एक तथ्य दर्ज करेंगे, अर्थात् जमानत को अस्वीकार करने के आदेश ने वास्तविकता प्राप्त कर ली है।

81. हम सबसे पहले रिट याचिका की रखरखाव पर विचार करेंगे। गिरफ्तारी पर सवाल उठाते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण की एक रिट दायर की गई थी। जब इसे अदालत द्वारा अगले दिन एक उल्लेख पर सुनवाई के लिए लिया गया, तो अपीलार्थी को पीएमएलए, 2002 की धारा 19 के अनुपालन में विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश के समक्ष विधिवत पेश किया गया। इस प्रकार अभिरक्षा न्यायिक हो जाती है क्योंकि उसे प्रत्यर्थियों द्वारा विधिवत अग्रेषित किया गया था। इसलिए, उच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई की तारीख पर भी रिट याचिका को 2023 की एचसीपी संख्या 1021 होने का कोई कारण नहीं था। इसके अलावा, 14.06.2023 पर ही रिमांड का आदेश पारित किया गया था। अदालत द्वारा पारित दो रिमांड आदेश, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में दर्ज किया गया है, दिमाग के स्पष्ट अनुप्रयोग को दर्शाते हैं। अतिरिक्त आधार उठाए जाने के बावजूद, वे एक विचार के बाद हैं,

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2023] 12 एस सी आर।

हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि अपीलार्थी के लिए एकमात्र उपाय कानून के तहत उपयुक्त न्यायालय से संपर्क करना है। जाहिर है कि ऐसा नहीं किया गया। हम यह भी नोट कर सकते हैं कि अपीलार्थी अपने अधिकारों के बारे में बहुत सचेत था और यही कारण है कि उसने एक आवेदन के माध्यम से रिमांड का विरोध भी किया।

82. हमारे इस निष्कर्ष के बावजूद कि रिट याचिका विचारणीय नहीं है, हम अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा की गई व्यापक दलीलों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ना चाहेंगे। जैसा कि विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा

उचित रूप से तर्क दिया गया है कि पी. एम. एल. ए., 2002 की योजना और उद्देश्य एक सुई जेनरिस विधान होना स्पष्ट है। हालाँकि हम आगे विस्तार से नहीं बताना चाहते हैं, हम पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 का पर्याप्त अनुपालन करते हैं जो गिरफ्तारी करने से पहले एक कठोर प्रक्रिया पर विचार करती है। विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश ने एक तर्कपूर्ण आदेश पारित करके उक्त तथ्य पर ध्यान दिया। तदनुसार अपीलार्थी को अदालत के समक्ष पेश किया गया और जब वह उसकी हिरासत में था, तो न्यायिक रिमांड दी गई। चूँकि यह एक तर्कपूर्ण और बोलने वाला आदेश है, इसलिए अपीलार्थी को उचित मंच के समक्ष इस पर सवाल उठाना चाहिए था। हम केवल प्रतिवादियों के पक्ष में रिमांड के बारे में चिंतित हैं। इसलिए, उस आधार पर भी हम मानते हैं कि बंदी प्रत्यक्षीकरण का एक रिट बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि गिरफ्तारी और हिरासत को पहले ही जमानत आवेदन की अस्वीकृति के माध्यम से बरकरार रखा जा चुका है।

83. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) की व्याख्या पर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं की दलीलों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा दीपक महाजन (उपरोक्त) मामले में कानून का काफी निपटारा किया गया है। यह नहीं कहा जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत दिए गए अन्य सभी सुरक्षा उपाय अभियुक्त व्यक्ति के लिए उपलब्ध होंगे, लेकिन फिर भी रिमांड के प्रावधान को लागू नहीं किया जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) केवल पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 का पूरक और पूरक है। हम इन दोनों कानूनों के बीच कोई अंतर्निहित विरोधाभास नहीं समझते हैं। जाहिर है, पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के तहत गिरफ्तारी केवल दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 के तहत उपलब्ध शर्तों से कहीं अधिक सख्त शर्तों के अनुपालन के बाद ही की जा सकती है।

84. एक ही अर्थ प्रदान करने वाली जाँच और जाँच के बीच परस्पर क्रिया केवल उससे उत्पन्न होने वाली सामान्य सामग्री के उपयोग के लिए होती है। ऐसी सामग्रियों का उपयोग दोनों उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए। यह वह आधार है जिसके आधार पर उन्हें एक साथ पढ़ा जाता है, जो एक विशेष 929 में समान अर्थ देता है।

वी. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. सुंदरेश, जे.] 930 सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [2023] 12 एस. सी. आर.

स्टेज। विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर) में यह एक के संदर्भ में था

अधिनियम को चुनौती, विशेष रूप से साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25 के आलोक में।

85. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कपिल सिब्बल ने एक बार फिर अपनी अनूठी शैली में विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर) पर भरोसा जताते हुए कहा कि उनका विचार है कि पीएमएलए, 2002 के तहत एक अधिकृत अधिकारी है -

जैसा कि विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर) में घोषित किया गया है, यह पुलिस अधिकारी नहीं है। के रूप में

कहा गया है कि एक अधिकारी से कानून के अनुसार प्रदर्शन करने की उम्मीद की जाती है। जाँच की प्रक्रिया में उन्हें कुछ शक्तियाँ दी गई हैं। कानून के तहत प्रदत्त ऐसी शक्तियों को पुलिस शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जाएगा, हालांकि, जब दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के आवेदन की बात आती है तो ऐसे प्राधिकरण को "ऐसी अभिरक्षा" अभिव्यक्ति के तहत लाया जाना चाहिए, खासकर जब "पुलिस अभिरक्षा" शब्दों को जानबूझकर हटा दिया जाता है। इसलिए, अनुपात

विजय मदनलाल चौधरी (ऊपर) को समझना होगा।

प्रासंगिक रूप से, अपने स्वयं के दृष्टिकोण से। 86. अनुपम जे. कुलकर्णी (ऊपर) के आधार पर कई तर्क दिए गए हैं। जैसा कि विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा सही रूप से प्रस्तुत किया गया है, तथ्य अलग-अलग हैं और इसलिए अलग-अलग हैं। मामले में, प्रत्यर्थियों के पक्ष में कोई अभिरक्षा नहीं है, एक तथ्य जिसे अपीलार्थी ने पहले अपने अधिवक्ताओं की दलीलों के माध्यम से भी स्वीकार किया था। विद्वान महान्यायवादी अपनी दलील में सही हैं कि इस तथ्य के अलावा कि "अभिरक्षा" शब्द "निरोध" से अलग है, यह केवल भौतिक हो सकता है। जैसा कि उन्होंने बताया कि उच्च न्यायालय ने भी कहा है कि अपीलार्थी अभी भी न्यायिक हिरासत में है। मान लीजिए, उत्तरदाताओं को शारीरिक हिरासत नहीं दी गई है। अपीलार्थी के अपनी पसंद के अस्पताल में प्रवेश को उत्तरदाताओं के पक्ष में शारीरिक अभिरक्षा नहीं कहा जा सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के आधार पर अभिरक्षा नहीं ली जा सकती जो निश्चित रूप से 15 दिनों की अवधि की गणना के रास्ते में नहीं आएगा। उम्मीद की जाती है कि एक जांच एजेंसी को अपनी भूमिका निभाने के लिए उचित स्वतंत्रता दी जाएगी। यह कहना कि उत्तरदाताओं को अस्पताल में अपीलार्थी की जांच करनी चाहिए थी, और वह भी डॉक्टरों की अनुमति से, कभी भी पर्याप्त अनुपालन नहीं कहा जा सकता है।

87. न्यायालय के किसी भी आदेश का उद्देश्य किसी व्यक्ति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करना नहीं है, भले ही उसका अंतिम निष्कर्ष उसके पक्ष में हो। एक्टस क्यूरी नेमेनेम ग्रेवबिट सिद्धांत निश्चित रूप से 15 दिनों की अवधि की गणना में लागू होगा।

88. कानून का सारांश:

आई. जब किसी गिरफ्तार व्यक्ति को पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 (3) के तहत क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाता है, तो हैबियस कॉर्पस की कोई रिट नहीं होगी। अवैध गिरफ्तारी की कोई भी याचिका ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष की जानी चाहिए क्योंकि अभिरक्षा न्यायिक हो जाती है।

ii. पी. एम. एल. ए., 2002 की धारा 19 के अधिदेश का कोई भी गैर-अनुपालन गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के लाभ के लिए सुनिश्चित होगा। इस तरह के गैर-अनुपालन के लिए, सक्षम न्यायालय के पास पीएमएलए, 2002 की धारा 62 के तहत कार्रवाई शुरू करने की शक्ति होगी। iii. रिमांड के आदेश को केवल एक उच्च मंच के समक्ष चुनौती दी जानी चाहिए जैसा कि सीआरपीसी, 1973 के तहत प्रदान किया गया है, जब यह पीएमएलए 2002 की धारा 19 के साथ पठित सीआरपीसी, 1973 की धारा 167 (2) की योग्यता और अनुपालन दोनों पर विवेक के उचित अनुप्रयोग को दर्शाता है।

iv. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 41 ए को पी. एम. एल. ए. 2002 के तहत की गई गिरफ्तारी के लिए कोई आवेदन नहीं मिला है।

v. पुलिस अभिरक्षा की अधिकतम 15 दिनों की अवधि जांच की पूरी अवधि-कुल मिलाकर 60 या 90 दिनों पर लागू होती है।

vi. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) में आने वाले "ऐसी अभिरक्षा" शब्दों में न केवल पुलिस अभिरक्षा बल्कि अन्य जांच एजेंसियों की भी अभिरक्षा शामिल होगी।

vii. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत "अभिरक्षा" शब्द का अर्थ वास्तविक अभिरक्षा होगा।

viii. किसी भी बाहरी परिस्थिति में 15 दिनों की पुलिस हिरासत में कटौती, भगवान का कार्य, अदालत का आदेश जांच एजेंसी का काम नहीं होने के कारण प्रतिबंध के रूप में कार्य नहीं करेगा। ix. सी. आर. पी. सी., 1973 की धारा 167 स्वतंत्रता और जाँच के बीच एक सेतु है जो एक संतुलनकारी कार्य करता है।

x. अनुपम जे. कुलकर्णी (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय के निर्णय के लिए, जैसा कि बाद में अनुसरण किया गया है, एक बड़ी पीठ को संदर्भित करके पुनर्विचार की आवश्यकता है।

931

V. सेंटिल बालाजी बनाम राज्य प्रतिनिधि, जिला निदेशक और ओ. आर. एस. [एम. एम. सुंदरेश, जे.]

निष्कर्ष:

89. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8939-8940 और 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 8652-8653 से उत्पन्न अपीलों को खारिज किया जा सकता है, जो विवादित निर्णयों में व्यक्त किए गए विचारों को बरकरार रखते हैं। तदनुसार, उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता है।

90. विचार किए जाने वाला एकमात्र अन्य प्रश्न अपीलार्थी की अभिरक्षा के संबंध में है। विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने प्रस्तुत किया कि 15 दिनों की अवधि 12.08.2023 से समाप्त हो जाती है। यहां तक कि प्रधान सत्र न्यायाधीश ने भी 8 दिनों की हिरासत दी है, हालांकि उन्हें प्रभावी रूप से नहीं दिया जा सका। समय की कमी को ध्यान में रखते हुए, हम प्रत्यर्थियों को 12.08.2023 तक अपीलार्थी की अभिरक्षा रखने की अनुमति देने के लिए इच्छुक हैं। तदनुसार, प्रत्यर्थियों के नेतृत्व में 2023 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 7437, 2023 की 7460 और 2023 की 8750 से उत्पन्न अपीलों का निपटारा किया जाता है। हस्तक्षेप के लिए आवेदन खारिज कर दिया जाता है। निर्देश के लिए आवेदन का निपटारा आवेदक को कानून द्वारा ज्ञात उपचार का सहारा लेने की स्वतंत्रता देने से होता है। लंबित आवेदनों, यदि कोई हो, का भी निपटारा किया जाता है।

91. जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह मामले को भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष सीआरपीसी, 1973 की धारा 167 (2) के वास्तविक आयात के बड़े मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए उचित आदेश के लिए रखे कि क्या पुलिस के पक्ष में हिरासत की 15 दिनों की अवधि केवल रिमांड के पहले 15 दिनों के भीतर या जांच की पूरी अवधि-60 या 90 दिनों में होनी चाहिए, जैसा भी मामला हो।

द्वारा तैयार किए गए हेडनोट:

याचिकाएं खारिज कर दी गईं।

अंकित ज्ञान